प्रगतिशील कविता के मील पत्थर

प्रगतिशील कविता के मील पत्थर

प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर

सम्पादक
डॉ० रणजीत

लोकभारती प्रकाशन
१५ ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●

कापीराइट
डॉ० रणजीत

●

संस्करण : १९८५

●

लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

पुस्तकालय संस्करण : ४०.००
विद्यार्थी संस्करण : २०.००

धूमिल
दुष्यन्त कुमार
और भारतभूषण अग्रवाल
को
जो इस संकलन के छपते-छपते हमारा साथ छोड़ गये

चन्द सतरें

प्रस्तुत संकलन की रूपरेखा मेरे दिल-दिमाग में कई साल पहले उन दिनों उभरी और एक अर्से तक घुमड़ती रही, जब मैं 'हिन्दी की प्रगतिशील कविता' पर शोध कर रहा था। हिन्दी साहित्येतिहास में प्रगतिशील कविता की उपेक्षा और समग्र रूप से उसके सम्यक् मूल्याङ्कन के प्रयासों के एकान्त अभाव ने ही मुझे उस पर शोध की प्रेरणा दी थी। इस शोध के क्रम में प्रगतिशील कविता का सारा वैभव मेरे सामने आया और यह तथ्य मुझे बड़ा क्लेशप्रद लगा कि हिन्दी में इस वैभव को रूपायित करने वाला प्रगतिशील कविता का एक भी प्रतिनिधि संकलन नहीं है। वैसे भी विभिन्न काव्यधाराओं, शैलियों और विषयों से संबंधित प्रतिनिधि संकलनों की हिन्दी में बहुत कमी है।

इस संकलन में हिन्दी के पचास कवियों की एक सौ ग्यारह चुनी हुई कविताएँ संकलित हैं। इस आकार का यह संकलन हिन्दी के प्रगतिशील काव्य की पूरी समृद्धि का दिग्दर्शन तो नहीं करा सकता और न उसकी संवेदनशीलता के विस्तार की ही सम्पूर्ण रूपरेखा प्रस्तुत कर सकता है, पर मेरा विश्वास है कि उसके सर्वाधिक द्युतिमान मणि-मुक्ताओं को अवश्य पाठकों के सामने रख सकेगा। मेरा यह प्रयत्न रहा है कि इस छोटे आकार में भी पिछले चालीस-पचास वर्षों के प्रगतिशील काव्यसृजन की अधिकांश उपलब्धियों को संचित किया जा सके।

लगभग सभी संकलित कवियों और कविताओं पर अपनी पुस्तक 'हिन्दी के प्रगतिशील कवि' में विस्तार से लिख चुका हूँ, इसीलिए उसे संक्षेप में भी दुहराना यहाँ व्यर्थ ही होगा।

संकलन की पांडुलिपि के निर्माण में वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान) में मेरी बी० ए० की छात्राओं—नेमलता मुणोत, ऊषा राय और मुकुल मल्लिक—के अतिरिक्त नेहरू महाविद्यालय के स्नातकोत्तर छात्र-छात्राओं तथा शोधार्थियों—श्रीमती नंदा सिंह, धर्मेन्द्र नलिन, सुमनलता तिवारी तथा कृष्णचन्द्र गुप्त—ने मदद की; इन सबका मैं कृतज्ञ हूँ।

मेरा विश्वास है कि यह संकलन हिन्दी के औसत समीक्षकों और अध्यापकों की प्रगतिशील कविता को नारेबाजी का पर्याय समझने की भ्रांति को दूर करने के साथ ही साथ अपने पाठकों को हिन्दी की प्रगतिशील कविता की विस्तृत संवेदनशीलता और उसके उदात्त मानववादी स्वर से परिचित करा सकेगा।

—रणजीत

७ नवम्बर ५४

अनुक्रम

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का उद्भव और विकास	...		१३-२४
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'			
बादल राग	...	...	१८
भिक्षुक	...	...	२२
तोड़ती पत्थर	...	...	२३
सुमित्रानन्दन पंत			
द्रुत झरो	...	...	२५
वह बुड्ढा	...	...	२६
वे आँखें	...	...	२७
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'			
जूठे पत्ते	...	....	२८
विद्रोही	...	...	३०
रामधारी सिंह 'दिनकर'			
विपथगा	...	...	३३
दिल्ली और मास्को	...	...	३४
हरिवंशराय 'बच्चन'			
लहरों का निमन्त्रण	....	....	३८
निर्माण	....	....	४०
छलयुग का कोरस	...	...	४१
नागार्जुन			
अकाल और उसके बाद	....	...	४३
पीपल के पीले पत्ते	...	...	४३
प्रत्यावर्तन	....	...	४५
मंत्र	...	....	४७

केदारनाथ अग्रवाल
एक बच्चे के जन्म पर ५०
नागार्जुन के बाँदा आने पर ५०
कुछ छोटी कविताएँ ५४
ओ मेरे संसार ५६
त्रिलोचन
कस्मै देवाय ५७
धूप ५८
शब्द ६०
शंकर शैलेन्द्र
जीत में यकीन कर ६१
शील
भाई का पत्र ६२
शिवमंगल सिंह 'सुमन'
मैं तुम्हें भूला नहीं हूँ ६५
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना ६७
साँसों का हिसाब ६८
'नीरज'
साँसों के मुसाफिर के नाम ७३
नील की बेटी के नाम ७४
अब युद्ध नहीं होगा ७८
वीरेन्द्र मिश्र
जिन्दगी गा रहा हूँ ८१
मेरा देश ८३
रामावतार त्यागी
अपनी कलम नहीं बेचूँगा ८७
सारी रात जागना होगा ८८

गंगाराम 'पथिक'
शायद कोई तूफान ९०
गजानन माधव मुक्तिबोध
मुझे कदम कदम पर ९१
पता नहीं.... .... ९३
एक अरूप शून्य के प्रति ९७
शमशेर बहादुर सिंह
य' शाम है १०२
अम्न का राग १०३
नजरुल के लिए १०८
विजयदेव नारायण साही
हम सभी बेचकर आये हैं अपने सपने ११८
छापामार दस्ते १२०
भवानी प्रसाद मिश्र
सतपुड़ा के जंगल १२३
गीत-फरोश १२५
नया त्यौहार १२७
भारत भूषण अग्रवाल
हम नहीं हैं द्वीप १३०
मूर्ति तो हटी, परन्तु... ... ... १३२
गिरिजाकुमार माथुर
तैंतीसवाँ वर्ष गाँठ १३६
हब्श देश १३८
धर्मवीर भारती
निराला के प्रति १४५
अनुशासन पर्व १५०
नरेश मेहता
अनुनय १५३

समय-देवता १५४
उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
लकड़बग्घे १६८
सत्यान्वेषी १७१
वीरेन्द्र कुमार जैन
सावधान, गलतफहमी में न रह जाना १७४
रामदरश मिश्र
होने और न होने के बीच १७७
सांस्कृतिक एकता १७८
दुष्यन्त कुमार
एक आशीर्वाद १८१
राह खोजेंगे १८१
गजल १८२
केदारनाथ सिंह
धानों का गीत १८४
निराकार की पुकार १८५
बढ़ई और चिड़िया १८७
नन्द चतुर्वेदी
दरवाजा खोलने के सिवाय १८८
इस इलाके में जंग छिड़ी है १८१
सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
भेड़िया १८३
आग १८४
राजीव सक्सेना
अस्तित्व का गीत १८८
आत्म-निर्वासन २०६
शलभ श्रीराम सिंह
जिन्दाबाद इन्कलाब २१२

हर बरस की तरह २१४
ग्रीष्म-दोपहर २१६
श्यामसुन्दर घोष
एक बीज का स्वगत-कथन २१७
धूमिल
बीस साल बाद २२४
अकाल-दर्शन २२५
रोटी और संसद २२८
विजय बहादुर सिंह
मेरे देश को गालियाँ मत दो २३०
रणजीत
पृष्ठभूमि २३४
प्रतिश्रुति का गीत २३५
क्रान्ति : एक भारी उद्योग २३८
जुगमंदिर तायल
लावा २४२
युद्ध के बाद शरद २४४
मदन डागा
कुर्सी प्रधान देश २४६
कृष्णमुरारी पहारिया
पथावरोधी शिला २४८
छाया २५०
केन-गीत २५१
मृत्युंजय उपाध्याय
व्यवस्था २५२
लीलाधर जगूड़ी
बलदेव खटिक २५३

चन्द्रकान्त देवताले
पेड़ २६७
थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे २६८
दूधनाथ सिंह
शेख मुजीबुर्रहमान २७३
कुमार विकल
यह सब कैसे होता है २७५
एक सामरिक चुप्पी २७८
वेणु गोपाल
जंगल-गाथा २८३
हमारी ही बात २८५
सुनो हिटलर २८६
रमेश रंजक
नहिं चइये २८७
दमन की चक्की २८८
सोमदत्त
राजनेता का अधसच सपना ३००
हमें ब्रह्माण्ड होना चाहिए ३०१
हरिजन हत्याकांड ३०३
उदय प्रकाश
इनकलाब ३०५
मालिक, आप नाहक नाराज हैं... ... ... ३०८
राजेश जोशी
पहाड़ ३१२
सलीम और मैं और उनसठ का साल ३१४
ज्ञानेन्द्र पति
मित्र के कमरे में ३२०
चमगादड़ ३२२

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का उद्भव और विकास

इससे पहले कि हम हिन्दी की प्रगतिशील काव्यधारा के जन्म और विकास पर दृष्टि डालें यह जान लेना उचित होगा कि वास्तव में प्रगतिशील कविता है क्या ! क्या यह प्रगतिवादी कविता का ही दूसरा नाम है ? या ये दोनों अलग-अलग वस्तुएँ हैं ? इस विषय पर हिन्दी के लगभग सभी समीक्षक एकमत नजर आते हैं कि प्रगतिवाद हिन्दी में मार्क्सवादी विचारधारा की साहित्यिक अभिव्यक्ति का नाम है, पर 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील साहित्य' के सम्बन्ध में स्वयं प्रगतिशील समीक्षकों में भी पर्याप्त मतभेद हैं।

श्री शिवदान सिंह चौहान 'प्रगतिवाद' शब्द को 'मार्क्सवादी सौंदर्य सिद्धांत' का पर्याय मानते हैं और इसलिए इस शब्द का प्रयोग साहित्य की किसी धारा के लिए करना उचित नहीं समझते। वे कहते हैं : "प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में भेद है, यह स्पष्ट होना ही चाहिए, अन्यथा गलत शब्दों का प्रचलन जारी रहेगा, आप कहेंगे कुछ, लोग समझेंगे कुछ। प्रगतिशील कविता का जब प्रश्न उठता है तो उसके पीछे किसी विशेष दार्शनिक वाद की मान्यता का आग्रह नहीं किया जा सकता। एक प्रगतिशील कवि गांधीवादी भी हो सकता है, मार्क्सवादी भी और द्वैत-अद्वैतवादी भी। जो साहित्य पाठक को स्वस्थ प्रेरणा देता है, मनोवृत्तियों को और उभार कर व्यक्ति को असामाजिक और मानवद्रोही नहीं बनाता, जीवन संग्राम में आगे बढ़ने का बल और साहस देता है और मनुष्य की चेतना को गहरा, व्यापक और मानवीय बनाता है, हिंसा और द्वेष को नहीं बढ़ाता और जो वास्तव में जीवन का मार्मिक और सारगर्भित स्थितियों का चित्रण करता है, अर्थात् जिसमें कला सौष्ठव और गहराई है, वह सब प्रगतिशील ही तो है।" (साहित्य की समस्याएँ, पृष्ठ ६२)

डॉ० रामविलास शर्मा प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में कोई अन्तर नहीं करते, इन दोनों शब्दों का पर्यायों की तरह प्रयोग करते हैं और 'प्रगति-

वाद' को 'मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्रीय दृष्टि' कहने के लिए चौहान जी का मजाक उड़ाते हैं। डॉ० नामवर सिंह भी न केवल इन दोनों को अभिन्न मानते हैं, इनमें भेद करने वाली को प्रगतिशील साहित्य का प्रच्छन्न विरोधी भी घोषित कर देते हैं। 'प्रगतिवाद' शब्द को वे रचनात्मक साहित्य और आलोचनात्मक मानदंड दोनों के लिए प्रयुक्त करते हैं और इसके पर्याय रूप में ही 'प्रगतिशील साहित्य' शब्द का भी प्रयोग करते हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्र का दृष्टिकोण भी लगभग यही है। डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय 'प्रगतिवाद' शब्द को 'मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्रीय दृष्टि' तक सीमित न रखकर इस दृष्टिकोण से लिखे हुए साहित्य को भी उसमें सम्मिलित कर लेते हैं और 'प्रगतिशील' शब्द को लगभग वही व्यापक अर्थ देते हैं, जो चौहान जी ने दिया है।

इस संबंध में मेरी अपनी धारणा चौहान जी तथा उपाध्याय जी से मिलती जुलती है। मार्क्सवादी सौंदर्य चिन्तन या समीक्षादृष्टि को 'प्रगतिवाद' मार्क्सवादी जीवन दर्शन से अनुप्राणित साहित्य को 'प्रगतिवादी साहित्य' और इस साहित्य सहित उस समस्त साहित्य को जो मूलतः मानववादी और अग्रगामी है, चाहे उसके स्रष्टाओं का दार्शनिक दृष्टिकोण कुछ भी हो, 'प्रगतिशील साहित्य' कहना चाहिए।

हिंदी में प्रगतिशील कविता का आरम्भ कब से माना जाय, इस संबंध में भी प्रगतिशील समीक्षकों में मतभेद है। डॉ० नामवर सिंह इसे १९३० से मानते हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्र १९३६ से। प्रगतिशील काव्य सृजन के प्रारंभिक इतिवृत्त से सम्बद्ध ध्यान देने योग्य तथ्य इस प्रकार हैं: आचार्य गयाप्रसाद शुक्ल सनेही ('त्रिशूल' जी) की 'साम्यवाद' कविता १९२१ में लिखी गयी। निराला जी का 'बादल राग' १९२३ में, 'भिक्षुक' १९२४ से २७ के बीच और 'तोड़ती पत्थर' १९३७ में लिखी गयी। पन्त जी की युगान्त में संकलित 'द्रुत-झरो', 'मानव', 'बाँसों का झुरमुट' आदि कविताएँ १९३४ से १९३६ के बीच में लिखी गयीं। पल्लव में संकलित उनकी लम्बी कविता 'परिवर्तन' १९२४ में लिखी गयी। श्री रामधारी सिंह दिनकर की 'रेणुका' में संकलित कविता 'कस्मै देवाय' १९३१ में तथा 'तांडव' और 'कविता की पुकार' १९३३ में लिखी गयीं। श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन की 'विप्लव गायन' १९२५ में, 'अनलगान'

मार्च ३६ में और 'जूठे पत्ते' जुलाई ३७ में लिखी गयी। श्री आरसी प्रसाद सिंह की 'रक्तपर्व', जिसमें स्पष्ट शब्दों में साम्यवाद का जयघोष किया गया है, जनवरी १९३४ में लिखी गयी। श्री रामेश्वर करुण के ब्रजभाषा में लिखे हुए सात सौ प्रगतिशील दोहों का संकलन 'करुण सतसई' १९३४ में लाहौर से प्रकाशित हुआ था, पर उनकी खड़ीबोली की कविताएँ काफी बाद की हैं।

भिन्न-भिन्न समीक्षकों ने हिन्दी के प्रथम प्रगतिशील कवि होने का गौरव भी अलग-अलग रचनाकारों को दिया है। डॉ० नगेन्द्र सुमित्रानन्दन पन्त को ही हिन्दी में प्रगतिवाद का प्रथम कवि मानते हैं। पर नन्ददुलारे जी यह प्रवर्तक पद अंचल को देना चाहते हैं। डॉ० प्रकाशचन्द्र गुप्त श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' को प्रथम प्रगतिवादी कवि और 'हुङ्कार' को प्रथम प्रगतिवादी काव्यकृति मानते हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्र श्री गयाप्रसाद शुक्ल सनेही 'त्रिशूल' जी को हिन्दी का प्रथम प्रगतिशील कवि मानते हैं और ब्रजकिशोर चतुर्वेदी श्री रामेश्वर करुण को। श्री ललित मोहन अवस्थी के अनुसार हिन्दी में प्रगतिशील आंदोलन के प्रारम्भ कर्ता साम्यवादी नहीं, गैर साम्यवादी—ऐसे गैर-साम्यवादी जिनमें से कई आगे चल कर साम्यवाद-विरोधी तक हो गये थे। इनमें गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और भगवती चरण वर्मा प्रमुख हैं।

इन सब तथ्यों से दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि प्रगतिशील कविता के प्रथम स्रष्टा तो यद्यपि त्रिशूल जी ही थे तथापि हिन्दी के पहले प्रगतिशील कवि होने का गौरव पन्त जी को ही दिया जाना चाहिए। क्योंकि पन्त जी ही एक ऐसे कवि थे, जिन्होंने हिन्दी में प्रगतिशील काव्य-सृजन की एक वास्तविक परम्परा का प्रवर्तन किया। फिर वे अपने समसामयिक प्रगतिशील कवियों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित रूप से प्रगतिशील चिन्तन से प्रभावित और उसकी मूल सृजनात्मक चेतना से अधिक सम्पृक्त कवि भी थे।

और दूसरी यह कि यद्यपि छिटपुट प्रगतिशील कविताओं की रचना १९३० से भी काफी पहले से होने लगी थी, तथापि एक सशक्त धारा के रूप में प्रगतिशील कविता की सत्ता १९३६ से ही अनुभव की जाने लगी। हिन्दी में ही नहीं अधिकांश भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी प्रगतिशील आन्दोलन का वास्त-

विक और विधिवत प्रारम्भ १९३६ से ही होता है। हिन्दी में यही वह वर्ष है, जिसमें स्वयं छायावाद के एक प्रमुख स्तम्भ ने युगान्त लिखकर, छायावाद युग के अन्त और नये युग के प्रारम्भ की विधिवत घोषणा की। हिन्दी कविता और साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन का प्रारम्भ १९३६ से मानने के कई और भी कारण हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' का निर्माण इसी वर्ष हुआ और उसका पहला अधिवेशन भी, जो समसामयिक साहित्य-संसार की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, इसी वर्ष सम्पन्न हुआ।

यह तो हुई हिन्दी कविता में प्रगतिशील आन्दोलन की शुरुआत की बात। अब उसके अब तक के विकास पर एक नजर डाली जाय। इस विकास के सम्यक् अध्ययन के लिए हम उसे पाँच निश्चित दौरों या युगों में विभाजित कर सकते हैं : ये दौर वास्तव में हिन्दी की प्रगतिशील कविता के विकास की पाँच अवस्थाएँ हैं, जिनमें से होकर वह गुजरी है :

पहला दौर (१९३६ से १९४७ तक)
दूसरा दौर (१९४७ से १९५१ तक)
तीसरा दौर (१९५१ से १९६२ तक)
चौथा दौर (१९६२ से १९७४ तक), और
पाँचवाँ दौर (१९७४ से १९८४ तक)

प्रगतिशील कविता का पहला दौर कविता में प्रगतिशील आन्दोलन के प्रारम्भ से लेकर भारतीय जनता के औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्ति तक चलता है। यह वह युग है, जिसमें भारतीय जनता प्रमुखतः अपने तात्कालिक उद्देश्य —राष्ट्रीय स्वाधीनता—के लिए संघर्ष कर रही थी। इसलिए इस युग की प्रगतिशील कविता का मूलस्वर राष्ट्रीय और साम्राज्य-विरोधी है। बल्कि वस्तुस्थिति यह है कि इस युग में हिन्दी कविता की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा और प्रगतिशील काव्यधारा एक दूसरी के इतनी निकट आ गयीं कि कहीं-कहीं उनमें अन्तर करना कठिन हो गया। राष्ट्रीय रुझान के प्रगतिशील कवि, दिनकर और नवीन, मूलतः इसी युग के कवि हैं।

यह युग प्रगतिशील कविता का पहला युग था, इसलिए उसकी कविता में ऐसी बहुत सी प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान रहीं, जिनका प्रगतिशील आन्दोलन से कोई

अनिवार्य संबंध नहीं है और जिन्हें बाद की प्रगतिशील कविता ने स्वीकार नहीं किया। ऐसी प्रवृत्तियों में विध्वंसवाद और अराजकतावाद, कुत्सित यथार्थवाद और यौनवाद प्रमुख हैं। इस युग के अधिकांश प्रगतिशील कवियों ने एक ओर तो क्रान्ति की 'विपथगा' और 'दिगम्बरि' के रूप में कल्पना की तथा भविष्य की किसी सृजनात्मक धारणा के बिना ही 'उथल-पुथल' मचाने की कोशिश की, तो दूसरी ओर फ्रायड के प्रभाव में जन-स्वाधीनता के साथ-साथ कभी-कभार यौन-स्वाधीनता की धारणा को भी वाणी दी। चिन्तन की दृष्टि से इस युग की अधिकांश कविता—पन्त जी की कविताओं को छोड़ कर—अधिक परिपक्व नहीं दिखाई देती। हाँ, विविधता अवश्य उसमें पर्याप्त है।

इस युग के द्वितीय चरण, दूसरे महायुद्ध काल की प्रगतिशील कविताओं में फासिस्ट-विरोध मुखर हुआ है। यहीं से प्रगतिशील कविता में अन्तर्राष्ट्रीयता बोध की परंपरा प्रारंभ होती है, जो आगे के दौरों में निरन्तर विकसित होती गयी।

इस दौर में प्रकाशित प्रगतिशील कविता के प्रमुख संकलनों में निराला के कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला और नये पत्ते; पन्त के युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या; दिनकर के रेणुका, हुंकार, सामधेनी और कुरुक्षेत्र; सुमन के हिल्लोल, जीवन के गान और प्रलय सृजन; अंचल के किरण-बेला और करील तथा नरेन्द्र शर्मा के लाल निशान, प्रभातफेरी और हंसमाला का उल्लेख किया जा सकता है।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का दूसरा दौर मोटे तौर पर औपनिवेशिक स्वराज्य से भारतीय गणराज्य की घोषणा तक का दौर है। साम्यवादी दल की दृष्टि से, जिसकी नीतियों का प्रगतिशील आन्दोलन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा, देखा जाय तो यह वह दौर है जो उसके द्वारा ५१ में नये कार्यक्रम की स्वीकृति के साथ समाप्त होता है। यह वह युग है जिसमें नयी बनी राष्ट्रीय सरकार ने, अंग्रेज-अमेरिकी पूँजी पर बहुत अधिक आश्रित होने के कारण, भारत में जनवादी आन्दोलन को, जो औपनिवेशिक स्वराज्य की अपनी उपलब्धि से ही सन्तुष्ट नहीं था, भीषण दमन से कुचलने के प्रयत्न किये और उसे अधिक कटु और क्रान्तिकारी ही नहीं, कट्टर और संकीर्ण भी बना दिया। तेलंगाना का

किसान-विद्रोह इसी युग की एक प्रमुख घटना है। कांग्रेसी शासन के इन आरंभिक वर्षों में सामान्य रूप से जन-आन्दोलन और विशेष रूप से किसान-मजदूर आन्दोलन का दमन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

प्रगतिशील आन्दोलन इन परिस्थितियों से अप्रभावित नहीं रह सकता था। राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति का जनता के अन्य वर्गों की तरह प्रगतिशील लेखकों ने स्वागत किया और आशा की कि स्वाधीनता और सांस्कृतिक निर्माण का एक नया युग प्रारंभ होगा। पर जब नयी सरकार ने जनता पर अंधाधुंध दमन करना और स्पष्ट पूंजीवादी नीतियों पर चलना शुरू किया तो प्रगतिशील लेखकों में उसके प्रति कटुता की भावनाएँ बढ़ने लगीं। शीघ्र ही सरकार ने जन आन्दोलनों के साथ-साथ जनवादी सांस्कृतिक आन्दोलनों पर भी हमला बोल दिया। जन नाट्य संघ और प्रगतिशील लेखक संघ भी इस दमन की लपेट में आ गये। सभी प्रान्तों से इन संघों के सदस्य कलाकारों और लेखकों की बिना वारंट गिरफ्तारियों और बिना मुकदमा नजरबंदियों की खबरें आने लगीं।

इन सब परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप इस युग की प्रगतिशील कविता में जहाँ एक सधा हुआ क्रान्तिकारी स्वर, एक दृढ़ता और सुस्पष्टता मिलती है, वहाँ कविता को राजनीति और राजनीतिक संघर्षों तक सीमित करने की प्रवृत्ति तथा एक प्रकार की सैद्धान्तिक कट्टरता और कलाहीन सिद्धान्त-कथन की प्रवृत्ति भी उसमें मुखर है। इस युग की कविता को 'प्रगतिवादी' कविता कहा जा सकता है।

तत्कालीन प्रगतिशील कविता और उसकी प्रशंसक प्रगतिशील समीक्षा की इस चिन्ताजनक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए श्री शिवदान सिंह चौहान ने लिखा था : "किसी गहरी अनुभूति की कलात्मक अभिव्यंजना के बिना भी कविता में यदि 'सही' मानवतावादी दृष्टिकोण या सही वामपक्षीय विचार पद्यबद्ध हैं, तो उन हल्की तुकबन्दियों को भी 'नये युग' की कविता घोषित करने में हमारे कतिपय आलोचक संकोच नहीं करते और समझते हैं कि कोरे साधारणीकृत विचारों, सिद्धान्तों और वक्तव्यों में 'आगे बढ़ते जाने' या 'लड़ते जाने' के गर्वोक्तिपूर्ण उद्गारों और 'अंधेरा-सबेरा' की टकसाली चित्र-कल्पनाओं को

यांत्रिक ढंग से जोड़ कर तुकों की बंदिश बाँध देने या मुक्त छंद के रूप में लिख देने भर से ही कविता में 'प्रगति तत्त्व' पैदा हो जाता है।" वास्तव में इस युग की प्रगतिशील कविता का एक बड़ा हिस्सा प्रगतिशील चेतना का उन्मेष न रह कर, साम्यवादी दल की तत्कालीन नीतियों की उद्घोषणाएँ मात्र रह गया था।

इस युग की कविता में केदार की युग की गंगा, शैलेन्द्र की न्यौता और चुनौती, शील की एक पग और उदय पथ की अधिकांश कविताएँ और नागार्जुन तथा रामविलास की अधिकांश सामयिक व्यंग-कविताएँ आ जाती हैं।

कुल मिला कर इस दूसरे दौर की प्रगतिशील कविता में सामाजिक यथार्थ के कुछ प्रभावशाली चित्र खींचे गये और कुछ तिलमिला देने वाले सामाजिक और राजनीतिक व्यंग लिखे गये। इस युग की कविता में एक सीधी चोट है, जो कई बार कलाविहीन वक्तव्यों में बदल जाती है।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का तीसरा दौर उस समय से शुरू होता है, जब राष्ट्रीय सरकार की घरेलू और विदेश नीति में थोड़ा परिवर्तन आता है और वह अपेक्षाकृत उदार घरेलू नीति तथा मोटे तौर पर साम्राज्यवाद-विरोधी विदेश नीति अपनाती है। १९५२ में बालिग मताधिकार के आधार पर पहला आम चुनाव हुआ। धीरे-धीरे नेहरू सरकार ने सोवियत संघ और चीन के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए वह अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगी। परिणाम स्वरूप अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ ने अपने पाँचवें अधिवेशन में, जो १९५३ में दिल्ली में हुआ, प्रगतिशील आन्दोलन को एक अधिक व्यापक और उदार स्वरूप देने का प्रयत्न किया। इन्हीं सब परिस्थितियों में हिन्दी की प्रगतिशील कविता ने एक नयी और उदार मानववादी अवस्था में प्रवेश किया। क्रान्ति की भावनाओं के साथ-साथ अफ्रेशियाई एकता की भावना, विश्वशान्ति की उत्कट आकांक्षा और एक संवेदनशील उदार मानववाद के स्वर उसमें मुखर होने लगे। साथ ही उसकी शिल्पचेतना भी विकसित हुई। ५१ में प्रकाशित दूसरा सप्तक में संकलित शमशेर और नरेश मेहता की कविताएँ इस नयी प्रगतिशील कविता का पहला सशक्त प्रतिनिधित्व करती हैं।

इस युग की प्रगतिशील कविता स्वच्छन्दतावादी कविता और नयी कविता के कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को अपने भीतर समेट कर आगे बढ़ी। इसलिए न तो संवेदनशीलता और न शिल्प-सजगता के अभाव की शिकायत उससे की जा सकती है। कविता में राजनीति को सर्वाधिक महत्त्व देने का आग्रह कम हुआ और जीवन को उसकी जटिलता और समग्रता में चित्रित करने की प्रवृत्ति बढ़ी।

इस तीसरे दौर की कविता के अन्तर्गत नागार्जुन की सतरंगे पंखों वाली और प्यासी पथराई आँखें, केदार की लीक और आलोक, सुमन के विश्वास बढ़ता ही गया और पर आँखें नहीं भरीं, नीरज के प्राणगीत और दर्द दिया है, वीरेन्द्र मिश्र का लेखनी बेला, गजानन माधव मुक्तिबोध का चाँद का मुंह टेढ़ा है, नरेश मेहता की दूसरा सप्तक की कविताएँ तथा वन पाखी सुनो, गिरिजा कुमार माथुर के धूप के धान और शिला पंख चमकीले, भवानी प्रसाद मिश्र का गीत फरोश, शमशेर की दूसरा सप्तक की कविताएँ, कुछ कविताएँ तथा कुछ और कविताएँ तथा दुष्यन्त कुमार के सूर्य का स्वागत और आवाजों के घेरे आदि कविता संकलन आ जाते हैं।

हिन्दी की प्रगतिशील कविता का चौथा दौर सामाजिक इतिहास की दृष्टि से भारत-चीन संघर्ष की घटना से और साहित्येतिहास की दृष्टि से नयी कविता के दौर की समाप्ति से शुरू माना जा सकता है। सन् ६२ में चीन के साथ संघर्ष में भारतीय सेनाओं की पराजय और बाद में चीन द्वारा एकतरफा पीछे हटने की कार्यवाही ने भारत के राष्ट्रीय स्वाभिमान को गहरी चोट पहुँचायी। भारत-चीन संघर्ष ने न केवल भारत-चीन मैत्री और सद्भाव के एक लम्बे दौर को समाप्त कर दिया, वरन भारत के साम्यवादी आन्दोलन पर भी एक गहरा आघात किया। भारत के साम्यवादी एक गम्भीर वैचारिक संकट में आ पड़े, भारत के साथ इस संघर्ष के बाद ही अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में चीन ने रूस की कुछ स्थापित और अब तक मान्य सैद्धान्तिक स्थितियों की खुली आलोचना और निन्दा शुरू की। दो बड़े समाजवादी देशों के बीच के सैद्धांतिक मतभेदों ने तमाम दुनियाँ के साम्यवादियों और प्रगतिशील जनवादियों को प्रभावित किया। इन्हीं प्रभावों में भारत का साम्यवादी दल, पहले दो और बाद में

कई गुटों में विभाजित हुआ। तरुण-विद्रोह का एक नया रूप नक्सलवाद सामने आया। इस युग की अन्य प्रमुख राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं में लाल बहादुर शास्त्री का प्रधान मंत्रित्व, पाकिस्तान के साथ युद्ध और ताशकन्द समझौता, १९६७ के चुनाव में पहली बार कांग्रेस के एकाधिकार का टूटना और अनेक प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी सरकारों का निर्माण, १९६९ में राष्ट्रपति के पद के चुनाव में पहली बार कांग्रेस के आधिकारिक उम्मीदवार की हार कांग्रेस का विभाजन और अगले चुनावों में इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस का और भी मजबूत होकर शासनारूढ़ होना, चैकोस्लोवाकिया में सोवियत सैनिक हस्तक्षेप तथा भारतीय महाद्वीप में एक नये स्वतन्त्र गणराज्य बांग्लादेश का जन्म प्रमुख हैं।

इन सभी घटनाओं ने इस दौर की प्रगतिशील कविता को प्रभावित किया। इस दौर के तरुण प्रगतिशील कवियों ने अपने-अपने समूहों को कुछ नयी संज्ञाएँ दीं और अपने-अपने ढंग से नयी कविता की 'निष्क्रियता', 'अनुभूतियों की प्रामाणिकता' और 'असम्पृक्ति' के विरुद्ध सीधी सम्पृक्ति के साथ अपने सामने की जिन्दगी का साक्षात्कार किया और उसे, बिम्ब-धर्मी मुहावरे से हट कर, कभी-कभी एक सपाट-बयानी के साथ भी प्रस्तुत किया। इन नयी संज्ञाओं में 'युयुत्सु कविता', 'प्रतिश्रुत कविता' और 'आज की कविता' ये तीन संज्ञाएँ आपेक्षिक रूप से अधिक प्रचलित रहीं।

तीसरे दौर में नयी कविता के वर्चस्व के कारण प्रगतिशील कवियों की राजनीतिक चेतना में भी एक तरह का भोंथरापन-सा आ गया था, वह सातवें दशक में नयी कविता के मिथ के टूटते-टूटते समाप्त होने लगा। नवयुवक कवियों की एक पूरी की पूरी पीढ़ी 'नयी कविता' से अपने को अलग घोषित करती हुई प्रगतिवादी दौर जैसे उत्साह के साथ कुंठाहीन स्वर में फिर से राजनीति को कविता का विषय बनाने लगी।

इस दौर की प्रगतिशील कविता में विद्रोह के तीन स्तर देखे जा सकते हैं : जनवादी विरोध, कुछ जिम्मेदार विद्रोह और एक दुस्साहसिकतापूर्ण समग्र विद्रोह। क्रान्तिकारी हिंसा को इससे पहले कभी कविता के केन्द्र में स्थापित करने की ऐसी कोशिश नहीं की गयी, जैसी इस युग के एक विद्रोही ग्रुप ने की है।

कुल मिला कर सातवें दशक की प्रगतिशील कविता अधिक प्रखरता पूर्वक राजनीतिक होकर भी निश्चित राजनीतिक दलों और सिद्धान्तों के दबाव से पाँचवें दशक की कविता की अपेक्षा अधिक मुक्त है। बड़े से बड़े साम्यवादी देश के नेताओं की आलोचना और यहाँ तक कि भर्त्सना करने की हिम्मत और गुंजाइश उसने प्राप्त कर ली। दो-तीन या और भी अधिक अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय साम्यवादी मतवादों के विकल्प के सामने रहने से नवयुवक प्रगतिशील कवि को अपनी रुझान और रुचि के अनुकूल मतवाद को स्वीकार करने या हर मुद्दे पर स्वयं सोच कर फैसला करने की जैसी गुंजाइश इस युग में रही, वैसी पहले कभी नहीं थी।

समसामयिक 'अकविता' आदि काव्यान्दोलनों के प्रभाव-स्वरूप इस युग की प्रगतिशील कविता में कभी-कभी शब्दों की निरर्थक संयोजना, वास्तविक दुनियाँ के अमूर्तिकरण और कुत्सापूर्ण शब्दावली के प्रयोग की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है।

इस दौर की कविता के अन्तर्गत राजीव सक्सेना का आत्म निर्वासन, रण-जीत का इतिहास का दर्द, जुगमंदिर तायल का सूरज सब देखता है, मृत्युंजय उपाध्याय का किन्तु, श्रीराम शलभ का कल सुबह होने से पहले, हरीश भादानी का सुलगते पिंड, केदारनाथ अग्रवाल का आग का आईना, भारतभूषण अग्रवाल का एक उठा हुआ हाथ और धूमिल का संसद से सड़क तक आदि संकलनों के अतिरिक्त कुमारेन्द्र पारस नाथ सिंह, अजित पुष्कल, कृष्णमुरारी आदि अनेक तरुण कवियों की छिट-पुट कविताएँ आ जाती हैं।

पाँचवें दौर की कविता को इधर कुछ मित्रों ने आठवें दशक की कविता कहना शुरू किया है, यद्यपि इसका प्रारंभ सन् ७१ से नहीं ७४ से मानना चाहिए। इंदिरा गांधी के नेतृत्व में केन्द्रीय सरकार में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता के विरुद्ध जयप्रकाश नारायण के जनप्रतिनिधियों को वापस बुलाने के अधिकार की मांग के साथ जो जनान्दोलन आरम्भ हुआ, उसके दमन की परिणति भारत के समकालीन राजनीतिक इतिहास की अभूतपूर्व घटना आपात्काल की घोषणा के रूप में हुई और उसकी आड़ में इंदिराजी की वैयक्तिक तानाशाही की स्थापना ने पूरे देश के राजनीतिक माहौल को बदल डाला।

पहली बार संविधान द्वारा प्रदत्त लोगों के मूलभूत अधिकार उनसे छीन लिए गये, स्वतंत्र प्रेस का पूरी तरह गला घोंट दिया गया और संजय गाँधी का संविधानेतर सत्ताकेन्द्र विकसित हुआ। बीस महीने के आपात्काल के बाद ज्योंही चुनाव हुआ, जनता ने विभिन्न प्रतिपक्षी दलों को मिलाकर जनता पार्टी का गठन किया और इंदिराजी की वैयक्तिक तानाशाही को परास्त किया। इस युग की अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाओं में इंदिरा शासन का पुनरागमन, अफगानिस्तान में सोवियत सेनाओं का हस्तक्षेप, 'साम्यवादी' कम्पूचिया पर साम्यवादी वियत-नाम का आक्रमण और अधिकार, पोलैंड में स्वतंत्र मजदूर संगठन सोलिडरिटी का विकास और देङ् शिआओ पिङ् के नये नेतृत्व में चीन में नयी, उदार और आधुनिकीकरण की नीतियों का अनुपासन प्रमुख हैं। इंदिरा गाँधी के जीवन के अन्तिम दिनों में असम का नरमेध हुआ, पंजाब की समस्याओं ने उग्रतावादी हिंसा और प्रतिहिंसा का रूप धारण किया और आंध्र के स्पष्ट बहुमत प्राप्त मुख्यमंत्री को केन्द्र के इशारे पर सत्ताच्युत करके भारतीय राजनीति ने अपनी मूल्यहीनता की चरम सीमाओं का आभास कराया।

आठवें दशक की प्रगतिशील कविता की कुछ चारित्रिक विशेषताओं की ओर यहाँ संकेत किया जा सकता है। सातवें दशक की आक्रामक और युयुत्सु मुद्रा यहाँ कम है, जीवन के मूलभूत सरकारों का भरापूरा संसार—आँसू और मुस्कान के कोमल प्रसंग, घाटी में खिले फूल, नदी, सागर, पहाड़, पेड़, चिड़ियाएँ और बच्चे—एक सम्पूर्ण अहसास के साथ इस कविता में मौजूद हैं, इनके सहारे वह मनुष्य के भीतर के उस आदिम इतिहास से टकराती है, जहाँ से सभ्यता और संस्कृति के नाम पर मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण और उत्पीड़न का सिलसिला शुरू हुआ। कहा जा सकता है कि छोटी-छोटी अनुभूतियों और चीजों के सहारे यह कविता मनुष्य की जड़ों तक जाने की कोशिश करती है। यही कारण है कि इस कविता में आदमी का आदिम स्वरूप बार-बार उभरता है, वह अपनी कुल्हाड़ी, पत्थर, चूल्हा, आग, बेल, जाल, मछली, तीरकमान और लश्कर सहेजता है और अपनी सामूहिक स्मृति को नये अर्थ-संदर्भों से गहरा करता है। भारतीय कविता की परंपरागत कथात्मकता भी एक नये ढंग से इस दौर की कविता में फिर से उभरी। आम आदमी के कष्टपूर्ण जीवन और

संघर्ष को कुछ मूर्त कथात्मक संदर्भों में बार-बार उभारा गया है। एक और बात जिसकी ओर प्रभाकर श्रोत्रिय ने संकेत किया है, यह है कि सातवें दशक के कवि जिस साधारण जन के पक्षधर थे, वह उनकी कवितायें अन्य या मध्यम पुरुष में अलग खड़े श्रोता की हैसियत से ऊपर नहीं उठ पाया था, पर आठवें दशक की कविता में वह 'राम गुलाम हम तुम एक हैं। अपने ईमान को पैरों से तोलें। अपनी हिम्मत को खून सा घोलें ईमान में' की पूरी भागीदारी की स्थिति में आया है। फिर इस कविता में प्रतिश्रुति का स्वरूप भी कुछ बदला है; वह बाहरी, सैद्धान्तिक नहीं रही, अक्सर कविता के भीतर ही इस तरह समोई हुई और आत्मीयता की ऊष्मा से परिपूर्ण है कि उसका सतही राजनीतिक नामांकन कठिन है।

आठवें दशक की प्रगतिशील कविता के अन्तर्गत दुष्यन्त कुमार की ग़जलों का प्रसिद्ध संकलन साये में धूप, रामदरश मिश्र का कंधे पर सूरज, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जंगल का दर्द, लीलाधर जगूड़ी के रात अब भी मौजूद है, बची हुई पृथ्वी तथा घबराये हुए शब्द, मणि मधुकर का बलराम के हजारों नाम, गिरिधर राठी का बाहर भीतर, चन्द्रकान्त देवताले का लकड़बग्घा हँस रहा है, रमेश रंजक के मिट्टी बोलती है और इतिहास दुबारा लिखो, विश्वनाथ तिवारी का साथ चलते हुए, वेणु गोपाल का हवाएँ चुप नहीं रहतीं, कुमार विकल का एक छोटी सी लड़ाई, केदारनाथ सिंह का जमीन पक रही है, राजेश जोशी का एक दिन बोलेंगे पेड़, सोमदत्त का किस्से अरबों हैं, उदय प्रकाश का सुनो कारीगर, ज्ञानेन्द्रपति का शब्द लिखने के लिए यह काग़ज बना है और विजेन्द्र का ये आकृतियाँ पुम्हारी आदि संकलन आते हैं।

प्रगतिशील कविता के मील-पत्थर

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

बादल-राग

(एक)

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में
सरित्-तड़ितगति-चकित पवन में
मन में, विजन-गहन-कानन में
आनन-आनन में रव घोर कठोर
राग अमर ! अंबर में भर निज रोर !
अरे वर्ष के हर्ष
बरस तू बरस-बरस रसधार !
पार ले चल मुझको
बहा, दिखा मुझको भी
निज गर्जन-भैरव संसार !
उथल-पुथल कर हृदय
मचा हलाहल—
चल रे चल
मेरे पागल बादल !

घँसता दल दल
हँसता है नद खल्-खल्

बहता कहता कुल-कुल कल-कल कल-कल ।
देख-देख नाचता हृदय
बहने को महा विकल-बेकल,
इस मरोर से—इसी शोर से—
सघन घोर गुरु-गहन रोर से
मुझे गगन का दिखला सघन वह छोर !
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

(दो)

ऐ निर्बन्ध !—
अन्धतम-अगम-अनर्गल बादल
ऐ स्वच्छन्द—
मन्द चंचल समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
बाधा-रहित विराट् !
ऐ विप्लव के प्लावन,
सावन-घोर गगन के ऐ सम्राट् !
ऐ अटूट पर टूट टूट पड़ने वाले उन्माद !
विश्व-विभव को लूट-लूट लड़ने वाले अपवाद !
श्री बिखेर, मुख-फेर कली के निष्ठुर पीड़न
छिन्न-भिन्न कर पत्र-पुष्प-पादप-वन-उपवन
वज्रघोष से ऐ प्रचण्ड
आतंक जमाने वाले !
कम्पित जंगम नीड़-विहंगम
ऐ न व्यथा पाने वाले !
भय के मायामय आँगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर

(तीन)

तिरती है समीर, सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया—
यह तेरी रणतरी
भरी आकांक्षाओं से,
घन भेरी-गर्जन से सजग, सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल, फिर-फिर !
बार-बार गर्जन
वर्षण है मूसलधार
हृदय थाम लेता संसार,
सुन सुन घोर वज्र-हुङ्कार
अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर
क्षत-विक्षत हत अचल शरीर
गगन-स्पर्शी स्पर्धा-धीर ।
हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार—
शस्य अपार,
हिल-हिल
खिल-खिल
हाथ हिलाते
तुझे बुलाते
विप्लव रव से शोभा पाते ।

अट्टालिका नहीं रे
आतंक भवन,

सदा पंक ही पर होता जल-विप्लव प्लावन
क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से सदा छलकता नीर
रोग-शोक में भी हँसता है शैशव का सुकुमार शरीर।
रुद्ध कोष है, क्षुब्ध-तोष
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतङ्क-अंक से काँप रहे हैं
घनी, वज्र-गर्जन से बादल
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।

जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर
हे विप्लव के वीर!
चूस लिया है इसका सार
हाड़ मात्र ही है आधार
ऐ जीवन के पारावार!

१९२३

भिक्षुक

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये।
भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता-भाग्यविधाता से क्या पाते?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं खड़े हुए।

ठहरो अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूँगा
अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम
तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा।

१९२७

तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर;
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार—
सामने तरु मालिका अट्टालिका प्राकार।

चढ़ रही थी धूप;
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप;
उठी झुलसती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गयी,
प्राय: हुई दुपहर—
वह तोड़ती पत्थर।
देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार;
देख कर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं,
सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।
एक छन के बाद वह काँपी सुघर
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
'मैं तोड़ती पत्थर।'

१९३७

सुमित्रानंदन पंत

द्रुत झरो

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
हे स्रस्त ध्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण !
हिम ताप पीत, मधुवात भीत,
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन !!

निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग।
जग-नीड़ शब्द औ' श्वास-हीन,
च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों से तुम
झर-झर अनन्त में हो विलीन !

कंकाल जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर,—पल्लव लाली !
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली !

मंजरित विश्व में यौवन के
जगकर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय स्वर मदिरा से
भर दे फिर नव-युग की प्याली !

१९३४

वह बुड्ढा

खड़ा द्वार पर लाठी टेके, वह जीवन का बूढ़ा पंजर
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी, हिलते हड्डी के ढाँचे पर

उभरी ढीली नसें जाल सी, सूखी ठठरी से हैं लिपटी
पतझर में ठूँठे तरु से ज्यों, सूनी अमरबेल हो चिपटी

उसका लम्बा डील-डौल है, हट्टी-कट्टी काठी चौड़ी
इस खंडहर में बिजली सी, उन्मत्त जवानी होगी दौड़ी।

बैठी छाती की हड्डी अब, झुकी रीढ़ कमठा सी टेढ़ी
पिचका पेट, गढ़े कंधों पर, फटी बिवाई से है एड़ी।

बैठ, टेक धरती पर माथा, वह सलाम करता है झुक कर
उस धरती से पाँव उठा लेने को जी करता है क्षण भर!

घुटनों से मुड़ उसकी लम्बी, टाँगें-जाँघें सटीं परस्पर
झुका बीच में शीश, झुर्रियों का झाँझर मुख निकला बाहर!

हाथ जोड़ चौड़े पंजों की गूंथी अंगुलियों को कर सम्मुख
मौन त्रस्त चितवन से, कातर वाणी से वह कहता निज दुख।

गर्मी के दिन, धरे उपरनी सिर पर लुंगी से ढाँपे तन—
नंगी देह भरी बालों से—बनमानुस सा लगता वह जन!

भूखा है पैसे पा कुछ गुनगुना, खड़ा हो, जाता वह घर
पिछले पैरों के बल उठ, जैसे कोई चल रहा जानवर!

काली नारकीय छाया निज, छोड़ गया वह मेरे भीतर
पैशाचिक सा कुछ, दुःखों से मनुज गया शायद उसमें मर!

१९३८

वे आँखें

अंधकार की गुहा सरीखी, उन आँखों से डरता है मन
भरा दूर तक उनमें दारुण दैन्य दुःख का नीरव रोदन!
अह, अथाह नैराश्य विवशता का उनमें भीषण सूनापन
मानव से पाशव पीड़न का देतीं वे निर्मम विज्ञापन!

फूट रहा उनमें गहरा आतंक, क्षोभ, शोषण, संशय, भ्रम
डूब कालिमा में उनकी कँपता मन, उनमें मरघट का तम
ग्रस लेती दर्शक को वह दुर्जेय दया की भूखी चितवन
झूल रहा उस छायापट में युग-युग का जर्जर जन-जीवन!

वह स्वाधीन किसान रहा, अभिमान भरा आँखों में इसका
छोड़ उसे मँझधार आज संसार कगार सदृश बह खिसका!
लहराते वे खेत दृगों में, हुआ बेदखल वह अब जिनसे
हँसती थी उसके जीवन की हरियाली जिनके तृन-तृन से!

आँखों ही में घूमा करता वह उसकी आँखों का तारा
कारकुनों की लाठी से जो गया जवानी में ही मारा।
बिका दिया घर-द्वार महाजन ने न ब्याज की कौड़ी छोड़ी
रह रह आँखों में चुभती वह कुर्क हुई बरधों की जोड़ी।

उजरी उसके सिवा किसे कब पास दुहाने आने देती ?
अह आँखों में नाचा करती उजड़ गयी जो सुख की खेती !
बिना दवा-दरपन के घरनी स्वरग चली—आंखें आतीं भर
देखरेख के बिना दुधमुँही बिटिया दो दिन बाद गयी मर !

घर में विधवा रही पतोहू, लछमी थी, यद्यपि पति-घातिन
पकड़ मँगाया कोतवाल ने डूब कुएँ में मरी एक दिन।
खैर, पैर की जूती जोरू, न सही एक दूसरी आती
पर जवान लड़के की सुध कर साँप लोटते, फटती छाती !

पिछले सुख की स्मृति आँखों में क्षण भर एक चमक है लाती
तुरत शून्य में गड़ वह चितवन तीखी नोक सदृश बन जाती।
मानव की चेतना न ममता रहती तब आँखों में उस क्षण
हर्ष-शोक अपमान-ग्लानि दुख-दैन्य न जीवन का आकर्षण !

उस अवचेतन क्षण में मानों वे सुदूर करती अवलोकन
ज्योति-तमस के पर्दों पर युग-जीवन के पट का परिवर्तन !
अंधकार की अतल गुहा सी अह, उन आँखों से डरता मन
वर्ग-सभ्यता के मंदिर के निचले तल की वे वातायन !

१९४०

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

जूठे पत्ते

क्या देखा है तुमने नर को नर के आगे हाथ पसारे ?
क्या देखे हैं तुमने उसकी आँखों में खारे फव्वारे ?
देखे हैं ? फिर भी कहते हो कि नहीं तुम विप्लवकारी ?
तब तो तुम हिजड़े हो या हो महाभयंकर अत्याचारी !

अरे चाटते देखा जूठे पत्ते जिस दिन मैंने नर को ?
उस दिन सोचा : क्यों न लगा दूँ आग आज इस दुनिया भर को ?
यह भी सोचा : क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का ?
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का ?

जगपति ? कहाँ, अरे सदियों से वह तो हुआ राख की ढेरी,
वरना समता-संस्थापन में लग जाती क्या इतनी देरी ?
छोड़ आसरा अलख शक्ति का, रे नर स्वयं जगत्पति तू है,
तू यदि जूठे पत्ते चाटे, तो तुझ पर लानत है, थू है !

ओ भिखमंगे ! अरे पराजित ! ओ मजलूम ! अरे चिर दोहित !
तू अखंड भण्डार शक्ति का, जाग अरे निद्रा-सम्मोहित !
प्राणों को तड़पाने वाली हुङ्कारों से जल-थल भर दे !
अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित पलीता धर दे !

१९३७

विद्रोही

(एक)

हम ज्योति-पुंज दुर्दम प्रचण्ड
हम क्रान्ति-वज्र के घन-प्रहार
हम विप्लव-रणचंडिका-जनक
हम विद्रोही, हम दुर्निवार !

हम वज्रपाणि, हम कुलिश-हृदय
हम दृढ़-निश्चय, हम अचल-अटल
हम महाकाल के व्याल रूप
हम शेषनाग के अतुल गरल

हम दुर्गा के भीषण नाहर
हम सिंह गर्जना के प्रसार
हम जनक प्रलय रणचंडी के
हम विद्रोही, हम दुर्निवार !

हमने गति दे कर चलित किया
इन गतिविहीन ब्रह्माण्डों को
हमने ही तो है सृजित किया
रज के इन वर्तुल भाण्डों को

हमने नवसृजन प्रेरणा से
छिटकाये तारे अम्बर में
हम ही विनाश भर लाये हैं
इस निखिल विश्व-आडम्बर में

हम स्रष्टा हैं, हम प्रलयंकर
हम सतत क्रान्ति की प्रखर धार !

अपने शोणित से ऊषा को
हम दे आये कुंकुम सुहाग

आदर्शों के उद्दीपन से
हमने रवि को दी अमित आग

माटी भी उन्नतग्रीव हुई
जब नव चेतना उठी जाग
जीवन-रंग फैला, जब हमने
खेली प्राणों की रक्त-फाग

हो चला हमारे इंगित पर
जग में नवजीवन का प्रसार !

हो गयी सृजित संगीत कला
हमने जो छेड़ी नवल तान
उन्मुक्त हो गये भाव-विहग
जो भरी एक हमने उड़ान

हमने समुद्र-मंथन करके
भर दिये जगत् में अतुल रत्न
संसृति को चेरी कर लाये
अनवरत हमारे ये प्रयत्न

संस्कृति उभरी, लालित्य जगा
सुन पड़ी सभ्यता की पुकार !

(दो)

चेतन ने जब विद्रोह किया
तब जड़ता में जीवन आया
जीवन ने जब विद्रोह किया
तब चमक उठी कंचन काया

वह जो विकास, उत्क्रमण, प्रगति
प्रकटी जीवन के हिय-तल में

वह है केवल विद्रोह-छटा
जो खिल उठती है पल-पल में
तब बोलो क्या हम सहन करें
दुर्दान्त तिमिर का अनाचार !

हम घर से निकले हैं गढ़ने
नव चंद्र-सूर्य, नव-नव अम्बर
नव सिंधु-धरा, नव जन-समाज
नव राजकाज, नव काल-प्रहर
दिक्काल नये, दिक्पाल नये
सब ग्वाल नये, सब बाल नये
हम सिरजेंगे ब्रजभूमि नयी
गोपियाँ नयी, गोपाल नये
आओ हम सब मिल कर नभ से
ले आयें रवि-शशि को उतार !

अपने ये सब बीहड़ जंगल
अपने ये सब ऊँचे पहाड़
इक दिन निश्चय हिल-डोलेंगे
सिंहों की सी करके दहाड़
उस दिन हम विस्मित देखेंगे
यह निविड़ तिमिर होते विलीन
उस दिन हम सस्मित देखेंगे
हम हैं अदीन, हम शक्ति-पीन
उस दिन दुःस्वप्नों की स्मृति सा
होगा बधिकों का भीम भार !
हम जनक प्रलय रणचंडी के
हम विद्रोही, हम दुर्निवार !

●

रामधारी सिंह 'दिनकर'

विपथगा

झन-झन-झन झन-झन झनन-झनन
झन-झन-झन झन-झन झनन-झनन
मेरी पायल झनकार रही तलवारों की झनकारों में,
अपनी आगमनी बजा रही मैं आप क्रुद्ध हुङ्कारों में,
मैं अहंकार-सी कड़क उठी हँसती विद्युत की धारों में,
बन काल-हुताशन खेल रही पगली मैं फूट पहाड़ों में,
अँगड़ाई में भूचाल, साँस में लंका के उनचास पवन !

रस्सी से कसे जवान पाप-प्रतिकार न जब कर पाते हैं
बहनों की लुटती लाज देखकर काँप-काँप रह जाते हैं
शस्त्रों के भय से जब निरस्त्र आँसू भी नहीं बहाते हैं
पी अपमानों के गरल घूंट शासित जब होंठ चबाते हैं
जिस दिन रह जाता क्रोध मौन, मेरा वह भीषण जन्म-लगन !

श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं
युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण !

चढ़कर जुनून-सी चलती हूँ मृत्युञ्जय वीर कुमारों पर
आतंक फैल जाता कानूनी पार्लमेन्ट, सरकारों पर

'नीरो' के जाते प्राण सूख मेरी कठोर हुङ्कारों पर
कर अट्टहास इठलाती हूँ 'ज़ारों' के हाहाकारों पर
झंझा सी पकड़ झकोर हिला देती दम्भी का सिंहासन !

मैं निस्तेजों का तेज, युगों के मूक मौन की वाणी हूँ
दिलजले शासितों के दिल की मैं जलती हुई कहानी हूँ
सदियों की जब्ती तोड़ जगी मैं उस ज्वाला की रानी हूँ
मैं जहर उगलती फिरती हूँ, मैं विष से भरी जवानी हूँ
भूखी बाघिन की घात क्रूर, आहत भुजंगिनी का दंशन !

असि की नोकों से मुकुट जीत अपने सिर उसे सजाती हूँ
ईश्वर का आसन छीन, कूद मैं आप खड़ी हो जाती हूँ
थर-थर करते कानून-न्याय इंगित पर जिन्हें नचाती हूँ
भयभीत पातकी धर्मों से अपने पग मैं धुलवाती हूँ
सिर झुका घमंडी सरकारें करती मेरा अर्चन-पूजन !

मुझ विपथगामिनी को न ज्ञात किस रोज़ किधर से आऊँगी
मिट्टी से किस दिन जाग क्रुद्ध अम्बर में आग लगाऊँगी
आँखें अपनी कर बन्द देश में जब भूकम्प मचाऊँगी
किसका टूटेगा शृङ्ग, न जाने किसका महल गिराऊँगी
निर्बन्ध, क्रूर, निर्मोह सदा मेरा कराल नर्तन-गर्जन !
झन-झन-झन झन-झन झनन-झनन !

दिल्ली और मास्को

(एक)

जय विधायके अमर क्रान्ति की ! अरुण देश की रानी !
रक्त-कुसुम-धारणि ! जगतारणि ! जय जय शिवे, भवानी !

अरुण विश्व की काली जय हो, लाल सितारों वाली जय हो
दलित, बुभुक्षु, विषण्ण मनुज की शिखा रुद्र मतवाली, जय हो।

जगज्ज्योति जय जय, भविष्य की राह दिखाने वाली
जय समत्व की शिखा, मनुज की प्रथम विजय की लाली
भरे प्राण में आग, भयानक विप्लव का मद ढाले
देश देश में घूम रहे तेरे सैनिक मतवाले।

नगर नगर जल रही भट्ठियाँ, घर घर सुलग रही चिंगारी
यह आयोजन जगद्दहन का, यह जल उठने की तैयारी
देश देश में शिखा क्षोभ की, उमड़ घुमड़ कर बोल रही है
लरज रही चोटियाँ शैल की, धरती क्षण क्षण डोल रही है

ये फूटे अंगार, कढ़े अम्बर में लाल सितारे
फटी भूमि, वे बहे ज्योति के लाल लाल फव्वारे
वर्ग-विषमता के विरुद्ध सारा संसार उठा है
अपना बल पहचान लहर कर पारावार उठा है
छिन्न भिन्न हो रहीं मनुजता के बंधन की कड़ियाँ
देश देश में बरस रहीं आज़ादी की फुलझड़ियाँ।

(दो)

एक देश है जहाँ विषमता से अच्छी हो रही गुलामी
जहाँ मनुज पहले स्वतंत्रता से हो रहा साम्य का कामी
भ्रमित ज्ञान से जहाँ जाँच हो रही दीप्त स्वातंत्र्य समर की
जहाँ मनुज है पूज रहा जग को, बिसार सुधि अपने घर की।

जहाँ मृषा सम्बन्ध विश्व-मानवता से नर जोड़ रहा है
जन्मभूमि का भाग्य जगत की नीति-शिला पर फोड़ रहा है

चिल्लाते हैं 'विश्व, विश्व' कह जहाँ चतुर नर ज्ञानी
बुद्धि-भीरु सकते न डाल जलते स्वदेश पर पानी
जहाँ मास्को के रणधीरों के गुण गाये जाते हैं
दिल्ली के रुधिराक्त वीर को देख लोग सकुचाते हैं।

(तीन)

दिल्ली, आह कलंक देश का, दिल्ली आह ग्लानि की भाषा !
दिल्ली, आह मरण पौरुष का, दिल्ली, छिन्न-भिन्न अभिलाषा !
विवश देश की छाती पर ठोकर की एक निशानी
दिल्ली, पराधीन भारत की जलती हुई कहानी !
मरे हुओं को ग्लानि जीवितों को रण की ललकार
दिल्ली, वीर-विहीन देश की गिरी हुई तलवार !

बरबस लगी देश के होंठों से यह भरी जहर की प्याली
यह नागिन स्वदेश-हृदय पर गरल उँड़ेल लोटने वाली
प्रश्न चिह्न भारत का, भारत के बल की पहचान
दिल्ली, राजपुरी भारत की, भारत का अपमान !

(चार)

ओ समता के वीर सिपाही, कहो, सामने कौन अड़ी है ?
बल से दिये पहाड़, देश की छाती पर यह कौन पड़ी है ?
यह है परतन्त्रता देश की, रुधिर देश का पीने वाली
मानवता कहता तू जिसको, उसे चबाकर जीने वाली !

यह पहाड़ के नीचे पिसता हुआ मनुज क्या प्रेय नहीं है ?
इसका मुक्ति-प्रयास स्वयं ही, क्या उज्ज्वलतम श्रेय नहीं है ?
यह जो कटे वीर सुत माँ के, यह जो बही रुधिर की धारा
यह जो डोली भूमि देश की, यह जो काँप गया नभ सारा

यह जो उठी शौर्य की ज्वाला, यह जो खिला प्रकाश
यह जो खड़ी हुई मानवता रचने को इतिहास
कोटि-कोटि सिंहों की यह जो उट्ठी मिलित दहाड़
यह जो छिपे सूर्य-शशि, यह जो हिलने लगे पहाड़ !

सो क्या था विस्फोट अनर्गल ? बालकुतूहल ? नर-प्रमाद था ?
निस्पेषित मानवता का यह क्या न भयङ्कर तूर्य-नाद था ?
इस उद्वेलन-बीच प्रलय का था पूरित उल्लास नहीं क्या ?
लाल भवानी पहुँच गयी है भरत-भूमि के पास नहीं क्या ?

फूट पड़ी है क्या न प्राण में नये तेज की धारा ?
गिरने को हो रही छोड़कर नींव, नहीं क्या कारा ?
नगपति के पद में जब तक है, बँधी हुई जंजीर,
तोड़ सकेगा कौन विषमता का प्रस्तर-प्राचीर ?

(पाँच)

दहक रही मिट्टी स्वदेश की, खौल रहा गंगा का पानी
प्राचीरों में गरज रही है, जंजीरों से कसी जवानी
यह प्रवाह निर्भीक तेज का, यह अजस्र यौवन की धारा
अनवरुद्ध यह शिखा यज्ञ की, यह दुर्जय अभिमान हमारा।

यह सिद्धाग्नि प्रबुद्ध देश की जड़ता हरने वाली
जन जन के मन में बन पौरुष-शिखा विहरने वाली
अर्पित करो समिध, आओ हे समता के अभियानी
इसी कुंड से निकालेगी भारत की लाल भवानी।

(छह)

हाँ भारत की लाल भवानी, जवा-कुसुम के हारों वाली
शिवा, रक्त-रोहित-वसना, कबरी में लाल सितारों वाली

कर में लिये त्रिशूल कमण्डल, दिव्य शोभिनी, सुरसरि-स्नाता
राजनीति की अचल स्वामिनी, साम्य-धर्म-ध्वज-धर की माता
भरत-भूमि की मिट्टी से शृङ्गार सजाने वाली
चढ़ हिमाद्रि पर विश्व-शांति का शंख बजाने वाली ।

(सात)

दिल्ली का नभ दहक उठा, यह श्वास उसी कल्याणी का है
चमक रही जो लपट चतुर्दिक, अंचल लाल भवानी का है
खोल रहे जो भाव वह्निमय, ये हैं आशीर्वाद उसी के
'जय भारत' के तुमुल रोर में गूंजित संगर-नाद उसी के

दिल्ली के नीचे मर्दित अभिमान नहीं केवल है
दबा हुआ शत-लक्ष नरों का अन्न-वस्त्र, धन-बल है
दबी हुई इसके नीचे भारत की लाल भवानी
जो तोड़े यह दुर्ग, वही है समता का अभियानी ।

हरिवंशराय 'बच्चन'

लहरों का निमंत्रण

तीर पर कैसे रुकूं मैं, आज लहरों में निमंत्रण

रात का अन्तिम प्रहर है, झिलमिलाते हैं सितारे
वक्ष पर युग बाहु बाँधे, मैं खड़ा सागर किनारे
वेग से बहता प्रभंजन, केश पट मेरे उड़ाता
शून्य में भरता उदधि-उर की रहस्यमयी पुकारें
इन पुकारों की प्रतिध्वनि, हो रही मेरे हृदय में
है प्रतिच्छायित जहाँ पर, सिन्धु का हिल्लोल-कम्पन
तीर पर कैसे रुकूं मैं आज लहरों में निमंत्रण !

जड़ जगत में वास कर भी, जड नहीं व्यवहार कवि का
भावनाओं से विनिर्मित, और ही संसार कवि का
बूंद के उच्छ्वास को भी अनसुना करता नहीं वह
किस तरह होता उपेक्षा-पात्र पारावार कवि का
विश्व पीड़ा से सुपरिचित हो तरल बनने पिघलने
त्याग कर आया यहाँ कवि, स्वप्न-लोकों के प्रलोभन
तीर पर कैसे रुकूं मैं आज लहरों में निमंत्रण !

आज अपने स्वप्न को मैं, सच बनाना चाहता हूँ
दूर की इस कल्पना के, पास जाना चाहता हूँ
चाहता हूँ तैर जाना, सामने अंबुधि पड़ा जो
कुछ विभा उस पार को इस पार लाना चाहता हूँ

स्वर्ग के भी स्वप्न भू पर, देख उनसे दूर ही था
किन्तु पाऊँगा नहीं, कर आज अपने पर नियंत्रण
तीर पर कैसे रुकूँ मैं आज लहरों में निमंत्रण !

पोत अगणित इन तरंगों ने डुबोये, मानता मैं
पार भी पहुँचे बहुत से, बात यह भी जानता मैं
किन्तु होता सत्य यदि यह भी सभी जलयान डूबे
पार जाने की प्रतिज्ञा, आज बरबस ठानता मैं
डूबता मैं किन्तु उतराता सदा व्यक्तित्व मेरा
हो युवक डूबें भले ही, है कभी डूबा न यौवन
तीर पर कैसे रुकूँ मैं आज लहरों में निमंत्रण !

निर्माण

नीड़ का निर्माण फिर फिर !
नेह का आह्वान फिर फिर !
वह उठी आँधी कि नभ में छा गया सहसा अँधेरा
धूलि धूसर बादलों ने भूमि को इस भाँति घेरा
रात सा दिन हो गया फिर रात आयी और काली
लग रहा था अब न होगा इस निशा का फिर सबेरा
रात के उत्पात भय से भीत जन जन, भीत कण कण
किन्तु प्राची से उषा की मोहनी मुस्कान फिर फिर !
नीड़ का निर्माण फिर फिर !
वह चले झोंके कि काँपे भीम कायावान भूधर
जड़ समेत उखड़-पुखड़ कर गिर पड़े टूटे विटप वर
हाय तिनकों से विनिर्मित घोंसलों पर क्या न बीती

डगमगाए जबकि कंकड़ ईंट पत्थर के महल—घर
बोल आशा के विहंगम, किस जगह पर तू छिपा था
जो गगन पर चढ़ उठाता गर्व में निज तान फिर फिर
नीड़ का निर्माण फिर फिर !
क्रुद्ध नभ के वज्रदन्तों में उषा है मुस्कराती
घोर गर्जन-मय गगन के कंठ में खग पंक्ति गाती
एक चिड़िया चोंच में तिनका लिए जो जा रही है
वह सहज में ही पवन उनचास को नीचा दिखाती
नाश के दुख से कभी दबता नहीं निर्माण का सुख
प्रलय की निस्तब्धता से सृष्टि का नव गान फिर फिर
नीड़ का निर्माण फिर फिर !
नेह का आह्वान फिर फिर !

छलयुग का कोरस

अब्बर देवी, जब्बर बकरा
तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

छोटा नाम बड़ा पर दर्शन, महिमा और बड़ी मशहूर
उससे और बड़े हैं पंडे, सत्ता-भत्ता-मद में चूर
भेंट चढ़ाएँ, धक्के खाएँ भगत, मचाएँ वे रंगरेल
अब्बर देवी, जब्बर बकरा, तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

गांधी की आंधी आयी थी, बीते लगभग बरस पचास
अपने साथ सपन लायी थी, सब कुछ होगा सबके पास
वादों की लादी भर जनता, आज रही है काँधों झेल
अब्बर देवी, जब्बर बकरा, तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

आसन भी है, शासन भी है, अफ़सर, दफ़्तर, फाइल, नोट
पुलिस, कचहरी, पलटन-सलटन, सबसे ताकतवर है वोट
वोट नहीं क्यों पाया तुमने ? तिकड़मबाजी में तुम फेल
अब्बर देबी, जब्बर बकरा, तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

गुल समाजवादी समाज का, पूंजीवाद खिला; अंधेर !
कलकत्ते की ओर चले थे, पहुँचे जाकर जैसलमेर !
बहुत दिनों पर भेद खुला है, ऊँट रहा है खींच नकेल
अब्बर देबी, जब्बर बकरा, तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

आय इकाई, बजट दहाई, प्लान सैकड़ा, कर्ज हज़ार
खर्च लाख में, साख बँधी है देता है हर देश उधार
पन्द्रह पीढ़ी गिरवी रख दी लीडर जी ने जूआ खेल
अब्बर देबी, जब्बर बकरा, तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

गाँठ बँधी है किस नारी से, किस नारी से फ़्लर्टी चार
इज्जत, नीति, हया, मर्यादा धोकर पी बैठी सरकार
घर की रानी पानी भरती, सर पर करती राज रखेल
अब्बर देबी, जब्बर बकरा, तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

तीन सतर की कविता निकली, तीस पेज का निकला लेख
तीन टांग की बछिया ब्याई, ताऊ गाड़े छत्तिस मेख
सींग हिलाता है पगुराता दुनियां-देखा बुढ़वा बैल
अब्बर देबी, जब्बर बकरा, तागड़ धिन्ना नागर बेल ।

●

नागार्जुन

अकाल और उसके बाद

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दाने आए घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुंआ उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पांखें कई दिनों के बाद ।

पीपल के पीले पत्ते

खड़ खड़ खड़ करने वाले
ओ पीपल के पीले पत्ते !
अब न तुम्हारा रहा ज़माना
शकल पुरानी रंग पुराना
सीख पुरानी ढंग पुराना
अब न तुम्हारा रहा ज़माना
आज गिरो कल गिरो कि परसों

तुमको तो अब गिरना ही है
बदल गयी ऋतु राह देखती लाल-लाल पत्तों की दुनियाँ
हरे-हरे कुछ भूरे-भूरे टूसों से लद रही टहनियाँ !
इनका स्वागत करते जाओ
पतझर आया झरते जाओ
ओ पीपल के पीले पत्ते !

लाल गुलाबी पत्ते कैसे
लह-लह-लह लहलहा रहे हैं
कैसी सुन्दर रात चाँद की
किरनों में ये नहा रहे हैं
छलक रहा इनमें जीवन-रस
दौड़ रही है इन पर लाली
बुनने लगे आँख खुलते ही
ये स्वर्णिम सपनों की जाली
यह इनका युग, ये इनके दिन
रहे अन्त की घड़ियाँ तुम गिन
हट जाओ इनको अवसर दो
छोटे हैं, बढ़ने का वर दो
पूर्ण हो रही आयु तुम्हारी
तुम हल्के इनका दिल भारी
राह रोक कर खड़े न होना
झूठ मूठ के बड़े न होना
सारा श्रेय तुम्हें दे देंगे
अपने पूर्वज की उदारता
जीवन भर ये याद रखेंगे
ओ पीपल के पीले पत्ते !

प्रत्यावर्तन

आज तेरी गोद में यह शीश रखकर
क्या बताऊँ मैं कि जो विश्राम पाया !

श्रान्त होकर बहुत ही असमर्थ होकर
लक्ष्य की कल्पित पहुँच से हाथ धोकर
व्यति खग सम पड़ा था कब से न जाने
तुम अमृतमयि, आ गयीं सहसा जिलाने ।
हो रहे थे आँसुओं से गाल गीले
वेदना से दीनता से नेत्र पीले
नहीं था कोई कि जो ममता दिखाता
नहीं था कोई कि जो आशा दिलाता
इस विषम स्थिति में तुम्हीं ने दुख बँटा कर
मृदु मनोरम अँगुलियों से मधु चटा कर
मलय चंदन लेप का मुझ को बचाया ।

शान्त हिमवत् के सुशीतल अंक में भी
और मानस के अमल उत्संग में भी
कहीं भी मैंने नहीं वह तृप्ति पायी
कहीं भी मुझको न ऐसी नींद आयी
धन्य अनुशासन तुम्हारी तर्जनी का
हो गया मालूम जीने का तरीका !
मधुर हो तुम और बंधन भी मधुर है
बेड़ियाँ हैं किन्तु इनमें दिव्य सुर है
देख कर अवसाद मेरा हिल गयीं तुम
देख कर मुस्कान मेरी खिल गयीं तुम
भर गया मैं स्फूर्ति से, नव चेतना से
क्योंकि तुम परिपूर्ण थी संवेदना से !

व्यक्तिगत सुख-दुःख को देकर तिलांजलि
कौन किसके लिए उद्यत रहा सांजलि !
धन्य हो तुम, धन्य ऐसी छत्र-छाया !

देखना सब कुछ मुझे था स्वयं जाकर
नदी नद वन गिरि मरुस्थल और सागर
पार करना था उदधि को तैर करके
नाप आना था चराचर सैर करके
नील नभ की परिधि की थी थाह पानी
उच्चतम अभियान की थी राह पानी;
पर तुम्हारे सामने तो एक मैं था
लक्ष्य मैं था, ध्येय मैं था, टेक मैं था
हृदय में पीड़ा, दृगों में लिये पानी
देखते पथ काट दी सारी जवानी !
मात्र मेरी भावना ही रात दिन थी
देवि ! तेरी साधना कितनी कठिन थी !
निठुर हो मैंने तुम्हारी बलि चढ़ा दी
क्योंकि आकांक्षा बहुत अपनी बढ़ा ली
पर असंभव था व्यथा का भार ढोना
भूल जाना तुम्हें, फिर निश्चिन्त होना
लगा नीरस अकेले धूनी रमाना
बुद्धि का शासन हृदय ने जब न माना
कल्पना के पंख सुन्दर तोड़ डाले
भूमि पर चलने लगा तो पड़े छाले
हो सका मुझको न अब तक ज्ञात उस दिन
तुम उठा लायीं कि मैं ही स्वयं आया !
आज तेरी गोद में यह शीश रखकर
क्या बताऊँ मैं कि जो विश्राम पाया !

१९४२

मंत्र

ओं शब्द ही ब्रह्म है
ओं शब्द और शब्द और शब्द और शब्द
ओं प्रणव, ओं नाद, ओं मुद्राएं
ओं वक्तव्य, ओं उद्‌गार ओं घोषणाएँ
ओं भाषण···
ओं प्रवचन···
ओं हुङ्कार, ओं फटकार, ओं शीत्कार
ओं फुसफुस, ओं फुत्कार, ओं चीत्कार
ओं आस्फालन, ओं इंगित, ओं इशारे
ओं नारे और नारे और नारे और नारे

ओं सब कुछ, सब कुछ, सब कुछ
ओं कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं
ओं पत्थर पर को दूब, खरगोश के सींग
ओं नमक-तेल-हल्दी-जीरा-हींग
ओं मूस की लेड़ी, कनेर के पात
ओं डायन की चीख, औघड़ की अटपट बात
ओं कोयला-इस्पात-पेट्रोल
ओं हमी हम ठोस, बाकी सब फूटे ढोल

ओं इदमन्नं, इमा आपः इदमाज्यं, इदं हविः
ओं यजमान, ओं पुरोहित, ओं राजा, ओं कविः
ओं क्रान्तिः क्रान्तिः क्रान्तिः सर्वग्वं क्रान्तिः
ओं शांतिः शांतिः शांतिः सर्वग्वं शांतिः
ओं भ्रांतिः भ्रांतिः भ्रांतिः सर्वग्वं भ्रांतिः
ओं बचाओ बचाओ बचाओ बचाओ

ओं हटाओ हटाओ हटाओ हटाओ
ओं घेराओ घेराओ घेराओ घेराओ
ओं निभाओ निभाओ निभाओ निभाओ

ओं दलों में एक दल अपना दल, ओं
ओं अंगीकरण, शुद्धीकरण, राष्ट्रीयकरण
ओं मुष्टीकरण, तुष्टीकरण, पुष्टीकरण
ओं एतराज, आक्षेप, अनुशासन
ओं गद्दी पर आजन्म बज्रासन
ओं ट्रिब्युनल ओं आश्वासन
ओं गुट निरपेक्ष सत्तासापेक्ष जोड़ तोड़
ओं छल-छन्द ओं मिथ्या ओं होड़महोड़
ओं बकवास, ओं उद्घाटन
ओं मारण-मोहन-उच्चाटन

ओं काली काली काली महाकाली महाकाली
ओंम्मार मार मार, वार न जाए खाली
ओं अपनी खुशहाली
ओं दुश्मनों की पामाली
ओम्मार मार, मार, मार, मार, मार, मार
ओ अपोजिशन के मुंड बने तेरे गले का हार
ओं ऐं ह्रीं क्ली ह्रूं आङ्
ओं हम चबाएँगे तिलक और गाँधी की टांग
ओं बूढ़े की आँख, छोकरी का काजल
ओं तुलसीदास, विल्वपत्र, चन्दन, रोली, अक्षत, गंगाजल
ओं शेर के दाँत, भालू के नाखून, मर्कट का फोता
ओं हमेशा हमेशा हमेशा करेगा राज मेरा पोता
ओं छूः छूः फूः फूः फट् फिट् फुट्
ओं शत्रुओं की छाती पर लोहा कुट

ओं भैरो, भैरो, भैरो, ओं बजरंगबली
ओं बन्दूक का टोटा, पिस्तौल की नली
ओं डालर, ओं रूबल, ओं पाउंड
ओं साउंड, ओं साउंड, ओं साउंड

ओम् ओम् ओम्
ओम् धरती, धरती, धरती, व्योम् व्योम् व्योम्
ओं अष्ट धातुओं की ईंटों के भट्ठे
ओं महामहिम, महामहो, उल्लू के पट्ठे
ओं दुर्गा दुर्गा दुर्गा तारा तारा तारा
ओं इसी पेट के अन्दर समा जाए सर्वहारा
हरिः ओं तत्सत् हरिः ओम् तत्सत्

•

केदारनाथ अग्रवाल

एक बच्चे के जन्म पर

हाथी सा बलवान, जहाजी हाथों वाला और हुआ
सूरज सा इन्सान तरेरी आँखों वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ !

माता रही विचार अँधेरा हरने वाला और हुआ
दादा रहे निहार सबेरा करने वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ !

जनता रही पुकार, सलामत लाने वाला और हुआ
सुनले री सरकार ! कयामत ढाने वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ !

नागार्जुन के बाँदा आने पर

यह बाँदा है
सूदखोर आढ़त वालों की इस नगरी में
जहाँ मार काबर कछार मड़ुवा की फसलें
कृषकों के पौरुष से उपजा कण-कण सोना
लढ़ियों में लद-लद कर आकर

बीच हाट में बिक कर कोठों गोदामों की
गहरी खाहों में खो जाता है जा जा कर
और यहाँ पर रामपदारथ, रामनिहोरे
बेनी पंडित, बासुदेव बल्देव विधाता
चन्दन, चतुरी और चतुर्भुज
गाँवों से आ आ कर गहने गिरवी रखते
बढ़े ब्याज के मुँह में बरबस-बेबस घसते
फिर भी घर का खर्च नहीं पूरा कर पाते
मोटा खाते, फटा पहनते
लस्टम-पस्टम-जैसे-तैसे मरते-खपते

यह बाँदा है
और यहाँ पर मैं रहता हूँ
जीवन-यापन कठिनाई से ही करता हूँ
कभी आठ-दस-बीस पंक्तियाँ
और कभी कविता लिखकर
प्यासे मन की प्यास बुझा लेता हूँ रस से
शायद ही आता है कोई मित्र यहाँ पर
शायद ही आती है मेरे पास चिट्ठियाँ
मेरे कवि मित्रों ने मुझ पर कृपा न की है
इसीलिए रहता उदास हूँ, खोया खोया
अपने दुःख दर्दों में डूबा
जनसाधारण की हालत से ऊबा-ऊबा
बाण-बिंधे पक्षी सा घायल
जल से निकली हुई मीन सा विकल तड़पता
इसीलिए आतुर रहता हूँ
कभी कभी तो कोई आए
छठे-छमासे चार-पाँच दिन तो रह जाए

मेरे साथ बिताए
काव्य-कला, साहित्य-क्षेत्र की छटा दिखाए
और मुझे रस से भर जाए, मधुर बनाए
फिर जाए, जीता मुझको कर जाए।

आखिर मैं भी तो मनुष्य हूँ
और मुझे भी कवि-मित्रों का साथ चाहिए
लालायित रहता हूँ सबसे मैं मिलने को
श्याम-सलिल के श्वेत-कमल सा खिल उठने को
सच मानो जब यहाँ निराला जी आए थे
उन्हें देखकर मुग्ध हुआ था, धन्य हुआ था
कविताओं का पाठ उन्हीं के मुख से सुनकर
गन्धर्वों को भूल गया था
तानसेन को भूल गया था
सूरदास, तुलसी, कबीर को भूल गया था
ऐसी वाणी थी हिन्दी के महाकृती की।
तब यह बाँदा काव्य-कला की पुरी बना था
और साल-पर-साल यहां मधुमास रहा था
बम्बेश्वर के पत्थर भी बन गए हृदय थे
चूनरिया बन गयी हवा थी गौने वाली
यह धरती हो गयी वधू थी फूलों वाली
और गगन का राजा सूरज दूल्हा बन कर
चूम रहा था प्रिय दुल्हन को।
बंधु आज भी वह दिन मुझको नहीं भूलता
जब तुम आए।
उसकी स्मृति अब भी बेले सी महक रही है
उस दिन का आनन्द आज भी
कालिदास का छन्द बना मन मोह रहा है

मुक्त मोर बन श्याम बदरिया भरे हृदय में
दुपहरिया में शाम-सबेरे नाच रहा है
रैन-अँधेरे में चंदनिया बाँह पसारे
हमको सबको भेंट रहा है
संभवतः उस दिन मेरा नव जन्म हुआ था
संभवतः उस दिन मुझको कविता ने चूमा
संभवतः उस दिन मैंने हिमगिरि को देखा
गंगा के कूलों की मिट्टी मैंने पायी
उस मिट्टी में उगती फसलें मैंने पायीं

और उसी के कारण अब तक बाँदा में जीवित रहता हूँ
और उसी के कारण अब तक कविता की रचना करता हूँ
और तुम्हारे लिए पसारे बाँह खड़ा हूँ
आओ साथी गले लगा लूं
तुम्हें, तुम्हारी मिथिला की प्यारी धरती को
तुममें व्यापे विद्यापति को
और वहाँ की जनवाणी के छन्द चूम लूं
और वहाँ के गड़-पोखर का पानी छूकर नयन जुड़ा लूं
और वहाँ के दुख मोचन मोहन माँझी को मित्र बना लूं
और वहाँ के हर चावल को हाथों में ले हृदय लगा लूं
और वहाँ की आब हवा से वह सुख पा लूं
जो गीतों में गाया जाकर कभी न चुकता
जो नृत्यों में नाचा जाकर कभी न चुकता
जो आँखों में आँजा जाकर कभी न चुकता

अहो भाग्य है जो तुम आए मुझसे मिलने
इस बाँदा में चार रोज के लिए ठहरने
अहो भाग्य है मेरा, मेरे घर वालों का

जिनको तुम स्वागत में हँसते देख रहे हो
अहो भाग्य है इस जीवन के इन फूलों का
जिनको तुम अपनी कविता में सींच रहे हो
अहो भाग्य है बम्बेश्वर की चौड़ी चकली चट्टानों का
जिनको तुमने प्यार किया है, सहलाया है
अहो भाग्य है केन नदी के इस पानी का
जिसकी धारा बनी तुम्हारे स्वर की धारा
अहो भाग्य है इस बांदा की कठिन भूमि का
जिसको तुमने चरण छुआ कर जिला दिया है।

कुछ छोटी कविताएँ

एक

तेजधार का कर्मठ पानी
चट्टानों के ऊपर चढ़कर
मार रहा है
घूँसे कसकर
तोड़ रहा है तट चट्टानी

दो

चील दबाये है
पञ्जों में
मेरे दिल को
हरी घास पर
खुली हवा में
जिसे धूप में
मैंने रक्खा

तीन

मैं उसे खोजता हूँ
जो आदमी है
और अब भी आदमी है
तबाह होकर भी आदमी है
चरित्र पर खड़ा
देवदार की तरह बड़ा।

चार

आज नदी बिल्कुल उदास थी
सोयी थी अपने पानी में
उसके दर्पण पर
बादल का वस्त्र पड़ा था
मैंने उसको नहीं जगाया
दबे पाँव घर वापस आया !

पाँच

हम जियें न जियें दोस्त
तुम जियो एक नौजवान की तरह
खेत में झूम रहे धान की तरह
मौत को मार रहे बान की तरह
हम जियें न जियें दोस्त
तुम जियो अजेय इन्सान की तरह
मरण के इस रण में अमरण
आकर्ण तनी
कमान की तरह।

ओ मेरे संसार

जैसे कोई सितारिया द्रुत में सितार को बजाए
लय में पहुँच कर वह स्वयं लय हो जाए
फिर न वह सितार को बजाए—
चलता हाथ ही बजाए
और वह संगेत—झंकृत संगीत
तात्विक संगीत हो जाए
केवल आनन्द ही आनन्द लहरे और लहराए
केवल शरीर ही उसका
सितार से टिका रह जाए।

ओ मेरे संसार !
मैं यही तुमसे पाऊँ
जब तक मैं जीऊँ, तुम्हें बजाऊँ
न मैं रुकूँ, न कोई रोक पाए
आयु मैं अपनी इस तरह बिताऊँ।

●

त्रिलोचन

कस्मै देवाय
(एक सानेट)

मैंने उनके लिए लिखा है जिन्हें जानता
हूँ जीवन के लिए लगाकर अपनी बाज़ी
जूझ रहे हैं, जो फेंके टुकड़ों पर राज़ी
कभी नहीं हो सकते हैं। मैं उन्हें मानता

हूँ आगामी मनुष्यताओं का निर्माता।
कभी आत्म-रक्षा से ही वह ज्योति जगी है
जिससे असत्-अँधेरे की सब शक्ति लगी है
थर थर काँपते। नये युग के उद्गाता

वे हैं जो हैं निपट निरक्षर लेकिन जिनकी
प्राणों की ललकार जानती कभी न रुकना
जिनका आहत मान जानता नेक न झुकना।
स्पष्ट रूपरेखा है उनको अपने दिन की।

क्रान्ति उन्हीं लोगों के पास पला करती है,
दुख के तम में जीवन-ज्योति जला करती है।

धूप

धूप सुन्दर
धूप में
जगरूप सुन्दर
सहज सुन्दर !
व्योम निर्मल
दृश्य जितना
स्पृश्य जितना
भूमि का वैभव-
तरंगित रूप सुन्दर
सहज सुन्दर।

तरुण हरियाली
निराली शान शोभा
लाल पीले
और नीले
वर्ण वर्ण प्रसून सुन्दर
धूप सुन्दर
धूप में जगरूप सुन्दर !

ओस कण के
हार पहने
इन्द्रधनुषी
छवि बनाये
शस्य तृण
सर्वत्र सुन्दर
धूप सुन्दर
धूप में जगरूप सुन्दर !

सघन पीली
ऊर्मियों में
बोर
हरियाली
सलोनी
झूमती सरसों
प्रकम्पित वात से
अपरूप सुन्दर
धूप सुन्दर !

मौन एकाकी
तरंगें देखता हूँ
देखता हूँ
यह अनिर्वचनीयता
बस देखता हूँ
सोचता हूँ
क्या कभी
मैं पा सकूँगा
इस तरह
इतना तरंगित
और निर्मल
आदमी का रूप सुन्दर !
धूप सुन्दर
धूप में जगरूप सुन्दर !
सहज सुन्दर।

शब्द

शब्दों में उन अर्थों को मैं कैसे लाऊँ
जो आमों की टहनी टहनी में फल बन कर
झूल रहे हैं, जंगल में देखा है तन कर
सिंह किस तरह चलता है, किस विधि से पाऊँ
धरती का सा धैर्य, दृगों में व्योम बसाऊँ
फिर यह छवि उरेहता जाऊँ, मन से छन कर
रूप और से और बनेंगे, तन मन धन कर
कैसे उसको मूर्त बनाऊँ और सजाऊँ।

मुझको जीवन की मुद्राएं घेर रही हैं
जल थल नभ में प्राणों की अगणित धाराएं
प्रवहमान हैं—प्रकृति और मानव-कृति मिलकर
रूप जगत् का अपनी आँखों हेर रही हैं,
सृष्टि पदों की साक्षी हैं नभ की ताराएं,
अर्थ और भी खिलते हैं भावों में खिल कर।

●

शंकर शैलेन्द्र

जीत में यकीन कर

तू ज़िन्दा है तो ज़िन्दगी की जीत में यकीन कर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर!

ये ग़म के और चार दिन, सितम के और चार दिन
ये दिन भी जाएँगे गुज़र, गुज़र गये हज़ार दिन
सुबह ओ' शाम के रँगे हुए गगन को चूम कर
तू सुन ज़मीन गा रही है कब से झूम झूम कर
तू आ मेरा सिंगार कर तू आ मुझे हसीन कर!

हमारे कारवाँ का मंज़िलों को इन्तज़ार है
यह आँधियों की, बिजलियों की, पीठ पर सवार है
तू आ क़दम मिला के चल, चलेंगे एक साथ हम
मुसीबतों के सर कुचल, बढ़ेंगे एक साथ हम
कभी तो होगी इस चमन पर बहार की नज़र!

टिके न टिक सकेंगे भूख रोग के स्वराज ये
ज़मी के पेट में पली अगन, पले हैं ज़लज़ले
बुरी है आग पेट की, बुरे हैं दिल के दाग़ ये
न दब सकेंगे एक दिन बनेंगे इन्क़लाब ये
गिरेंगे जुल्म के महल, बनेंगे फिर नवीन घर!

●

शील

भाई का पत्र

चिट्ठी आई भाई की कुछ रुपया भेजो
पीछे घर गिर गया नहीं है आगे छप्पर
मुश्किल में है जान, लगी हैं आँखें छत पर
जाने कब गिर जाँय मुड़ेरें खिसक रही हैं
तुम बस रहे विदेश, रखे छाती पर पत्थर।
कभी न लिखता पत्र लिख रहा लाचारी में
जो कुछ भी था बचा न अबकी बीमारी में
बाकी पड़ा लगान न अबकी धान बो सका
पूरा होगा साल न खेतों की यारी में।
जंगल बेच ज़मींदारों ने रार सँजोई
रह जाती है ईंधन बिन अधपकी रसोई।
पुरखों की जादाद करूँ क्या सर पर रख कर
रुपया कर्ज-उधार नहीं जब देता कोई।
सोचा-समझा खूब, बहुत मन को समझाया
बेच रहा हूँ नीम, द्वार की शीतल छाया।
गयी चैत की फसल बेबसी के घेरे में
निगल गया खलिहान, न घर में दाना आया।
ऐसी हालत में बोलो क्या खर्चे-खायें?
कब तक ड्योढ़ा ले ले कर परिवार जिलायें
डपट रहा दुष्काल जिन्दगी की चिन्ता है
किस धरती पर रहें, कहाँ पर पैर जमायें?

पिछली बार गिरा जो धौला फिर न उठ सका
चला गया सुरधाम हाय साथी मेहनत का।
माँग-चाँग कर बैल बीज धरती में डाले
पर हो गये अनाथ लगा खेती को झटका
बिन बैलों की काश्त, स्वप्न में मोर नचाना
बिन सरगम का गीत भूख में गाल बजाना।
तुम तो कवि हो जरा कल्पना कर के देखो
छोड़ दिया है यहाँ जवानी ने इठलाना।
लिखना तो है बहुत, नहीं कुछ भी लिख पाता
देखें दिन का फेर अभी क्या क्या दिखलाता
विपदा आयी, पास नहीं है साथी कोई
पैसा ही बन गया आज नाते का नाता।
बिना दवा के मरी अभी कंचन की साली
लखतपशाह दाब बैठे हैं लोटा-थाली
कुछ लोगों को छोड़ गाँव का गाँव दुखी है
अबकी अपने गाँव न आयेगी दिवाली।
इसुरी पंडित बुरी तरह हैं काल-गाल में
उनके यहाँ पड़ गया डाका अभी हाल में
दिन में लूटे गये फूटबस गाँव न सनका
डूब मरी सुखदा खेरे के देवताल में।
चक-चक हुई हुई पंचों में कानाफूसी
शोर हुआ तो कहा पुलिस ने, ये हैं रूसी।
जोर-जुल्म की मार गाँव में हिला न तिनका
सुखदा की सम्पत्ति उड़ गयी जैसे भूसी।
उल्टे रोजे पड़े, फँसे इसुरी के नाना
न्याय कहाँ हुक्काम जहाँ लेते नजराना।
क्या बतलायें धनियों की सरकार हो गयी
रचते पंच प्रपंच, बनी पंचायत थाना।

भरा सन्त बेमौत लुट गया सोना भुर्जी
जालिम ने सब खेल लगा रक्खे थे फर्जी
दौड़ धूप की खूब मगर कुछ काम न आयी
दीमक के मुँह लगी न्याय की थाती, अर्जी।
किसकी किसकी कहें गाँव के बुरे हाल हैं
खद्दरधारी पंचायत में गोलमाल है।
झूठों के सरताज, कसम गांधी की खाते
भूखों मरें किसान मगर नेता निहाल हैं।
प्रीतम, तुलाप्रकाश, नन्दसिंह, जोधाभाई
अपना अपना दाँव लगा बन गये सगाई
सागरसिंह, घनश्यामसिंह ने चोले बदले
दूध मिनिस्टर का साला !—बन गया जमाई
तबसे उनके रामराज्य का ठाटबाट है
अत्याचारों में बढ़ती है लूट-पाट है
अबकी मंडल कांग्रेस में संघी आये
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा अब सपाट
कुछ दिन पहले सागर ने ध्रुव को पिटवाया
लाये थे वह यहाँ लाल झंडे की माया
सुक-सुक हुई, कलेजे धड़के, उठीं भुजायें
लेकिन अब है पुलिस-राज-आतंक समाया।
दुख दे रहा सुराज किसान कराह रहे हैं
भइया फिर अब तुम्हें यहाँ सब चाह रहे हैं।
तड़प रहे हैं लोग, घोर बेचैनी फैली
उठने को तूफान, अभी कुछ थाह रहे हैं।
थोड़ा लिखा, समझना ज्यादा, भूल न करना
रुपया देना भेज, मुसीबत देती धरना।

●

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

पर तुम्हें भूला नहीं हूं

मैं बढ़ा ही जा रहा हूँ पर तुम्हें भूला नहीं हूँ।

चल रहा हूँ क्योंकि चलने से थकावट दूर होती
जल रहा हूँ क्योंकि जलने से तमिस्रा दूर होती
गल रहा हूँ क्योंकि हल्का बोझ हो जाता हृदय का
ढल रहा हूँ क्योंकि ढल कर साथ पा जाता समय का
चाहता तो था कि रुक लूँ पार्श्व में क्षणभर तुम्हारे
किन्तु अगणित स्वर बुलाते हैं मुझे बाँहें पसारे
अनसुना करना उन्हें भारी प्रवंचन कापुरुषता
मुँह दिखाने योग्य रक्खेगी न मुझको स्वार्थपरता
इसलिए ही आज युग की देहली को लाँघ कर मैं
पथ नया अपना रहा हूँ, पर तुम्हें भूला नहीं हूँ।

ज्ञात है कब तक टिकेगी यह घड़ी भी संक्रमण की
और जीवन में अमर है भूख तन की, भूख मन की
विश्व-व्यापक वेदना केवल कहानी ही नहीं है
एक जलता सत्य केवल आँख का पानी नहीं है
शान्ति कैसी ? छा रही वातावरण में जब उदासी
तृप्ति कैसी ? रो रही सारी धरा ही आज प्यासी
ध्यान तक विश्राम का पथ पर महान अनर्थ होगा
रिण न युग का दे सका तो जन्म लेना व्यर्थ होगा

इसलिए ही आज युग की आग अपने राग में भर
गीत नूतन गा रहा हूँ, पर तुम्हें भूला नहीं हूँ।
सोचता हूँ आदिकवि क्या दे गये हैं हमें थाती
क्रौंचिनी की वेदना से फट गयी थी हाय छाती
जबकि पक्षी की व्यथा से आदिकवि का व्यथित अन्तर
प्रेरणा कैसे न दे कवि को मनुज-कंकाल जर्जर ?
अन्य मानव और कवि में है बड़ा कोई न अन्तर
मात्र मुखरित कर सके मन की व्यथा, अनुभूति के स्वर
वेदना असहाय हृदयों में उमड़ती जो निरन्तर
कवि न यदि कह दे उसे तो व्यर्थ वाणी का मिला वर
इसलिये ही मूक हृदयों में घुमड़ती विवशता को
मैं सुनाता जा रहा हूँ पर तुम्हें भूला नहीं हूँ।

आज शोषक-शोषितों में हो गया जग का विभाजन
अस्थियों की नींव पर अकड़ा खड़ा प्रासाद का तन
धातु के कुछ ठीकरों पर मानवी-संज्ञा-विसर्जन
मोल कंकड़-पत्थरों के बिक रहा है मनुज जीवन
एक ही बीती कहानी, जो युगों से कह रहे हैं
वज्र की छाती बनाये सह रहे हैं, रह रहे हैं
अस्थि-मज्जा से जगत् के सुख-सदन गढ़ते रहे जो
तीक्ष्णतर असिधार पर हँसते हुए बढ़ते रहे जो
अश्रु से उन धूलिधूसर शूलजर्जर क्षत पगों को
मैं भिगोता जा रहा हूँ, पर तुम्हें भूला नहीं हूँ।

आज जो मैं इस तरह आवेश में हूँ, अनमना हूँ
यह न समझो मैं किसी के रक्त का प्यासा बना हूँ
सत्य कहता हूँ पराये पैर का काँटा कसकता
भूल से चींटी कहीं दब जाय तो भी हाय करता

पर जिन्होंने स्वार्थवश जीवन विषाक्त बना दिया है
कोटि-कोटि बुभुक्षितों का कौर तलक छिना लिया है
'लाभ-शुभ' लिख कर ज़माने का हृदय चूसा जिन्होंने
और कल बंगाल वाली लाश पर थूका जिन्होंने
बिलखते शिशु की व्यथा पर दृष्टि तक जिनने न फेरी
यदि क्षमा कर दूँ उन्हें धिक्कार माँ की कोख मेरी
चाहता हूँ ध्वंस कर देना विषमता की कहानी
हो सुलभ सबको जगत में वस्त्र-भोजन अन्न-पानी
नवभवन निर्माणहित मैं जर्जरित प्राचीनता का
गढ़ ढहाता जा रहा हूँ, पर तुम्हें भूला नहीं हूँ

चली जा रही है बढ़ी लाल सेना

तना वक्ष, ज्वालामुखी श्वास में भर
लुटेरों की दुनियाँ पे बन के बवंडर
समय की डगर पर प्रलय के क़दम धर
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।

प्रलय के, सृजन के सभी साज सजकर
ढहे खंडहरों का क्षणिक मोह तजकर
विजय वेश आँखें लगी रक्त ध्वज पर
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।

युगों की सड़ी रूढ़ियों को कुचलती
ज़हर की लहर सी लहरती मचलती
अँधेरी निशा में मशालों सी जलती
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।

कुहू की निशा में उदित पूर्णिमा सी
जिधर डग, उधर फट गई कालिमा सी
क्षितिज पर उषा की तरुण लालिमा सी
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।
चरण-चिह्न में छोड़ती युग-निशानी
नया दिन, नया वेश, नूतन कहानी
चले झूमती ज्यों उमड़ती जवानी
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।
हुई मौन गिरजों की टन टन पुकारें
कँपी मंदिरों की पुरानी दीवारें
ठगी सी खड़ी मसजिदों की मीनारें
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।
गरजती कभी बिजलियों सी चमकती
समंदर उबलते धरित्री धँसकती
गरम खून से लाल इतिहास लिखती
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।
लगे गूँजने शोषितों के तराने
'चले आज हम स्वप्न सच्चे बनाने'
रुकेगी ? रुकेगी ! कहाँ कौन जाने ?
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना।

साँसों का हिसाब

तुम, जो जीवित कहलाने के हो आदी
तुम, जिनको दफ़ना नहीं सकी बरबादी
तुम, जिनकी धड़कन में गति का वंदन है

तुम, जिनकी कसकन में चिर संवेदन है
तुम, जो पथ पर अरमान भरे आते हो
तुम, जो हस्ती की मस्ती में माते हो
तुम, जिनने अपना रथ सरपट दौड़ाया
कुछ क्षण हाँफे, कुछ साँस रोककर गया
तुमने जितनी रासें तानी-मोड़ी हैं
तुमने जितनी साँसें खींची-छोड़ी हैं
उनका हिसाब दो और करो रखवाली
कल आने वाला है साँसों का माली।
कितनी साँसों की अलकें धूल-सनी हैं ?
कितनी साँसों की पलकें फूल-बनी हैं ?
कितनी साँसों को सुनकर मूक हुए हो ?
कितनी साँसों को गिनना चूक गये हो ?
कितनी साँसें दुविधा के तम में रोईं ?
कितनी साँसें जमुहाई लेकर खोईं ?
जो साँसें, सपनों में आबाद हुई हैं
जो साँसें सोने में बरबाद हुई हैं
जो साँसें साँसों से मिल बहुत लजाईं
जो साँसें अपनी होकर बनी पराईं
जो साँसें साँसों को छू कर गरमाईं
जो साँसें सहसा बिछुड़ गईं, ठंडाईं
जिन साँसों को ठग लिया किसी छलिया ने
उन सबको आज सहेजो इस डलिया में
तुम इनको निरखो परखो या अवरेखो
फिर साँस रोककर उलट पुलट कर देखो
क्या तुम इन साँसों में कुछ रह पाये हो ?
क्या तुम इन साँसों से कुछ कह पाये हो ?
क्या तुम साँसों के स्वर में बह पाये हो ?

क्या इनके बल पर सब कुछ सह पाये हो ?
इनमें कितनी हाथों में गह सकते हो
इनमें किन किन को अपनी कह सकते हो ?
तुम चाहोगे टालना प्रश्न यह जी भर
शायद हँस दोगे मेरे पागलपन पर
कवि तो अदना बातों पर भी रोता है
पगले साँसों का भी हिसाब होता है ?
कुछ हद तक तुम भी ठीक कह रहे लेकिन
सांसें हैं केवल नहीं हवाई स्पंदन
इनमें चिनगारी, नमी और कुछ घड़कन
जिससे चल पड़ता इस्पातों का स्यंदन ।
यह जो विराट् में उठा बवंडर जैसा
यह जो हिमगिरि पर है प्रलयंकर जैसा
इसके व्याघातों को क्या समझ रहे हो ?
इसके संघातों को क्या समझ रहे हो ?
यह सब साँसों की नई शोध है भाई
यह सब साँसों का मूक रोध है भाई
जब ये अन्दर अन्दर घुटने लगती हैं
जब ये ज्वालाओं पर चढ़कर जगती हैं
तब होता है भूकम्प शृङ्ग हिलते हैं
ज्वालामुखियों के वक्ष फूट पड़ते हैं
पौराणिक कहते दुर्गा मचल रही है
आगन्तुक कहते दुनिया बदल रही है ।
यह साँसों के सम्मिलित स्वरों की बोली
कुछ ऐसी लगती नई नई अनमोली
पहचान-जान में समय लगा करता है
पग-पग नूतन इतिहास जगा करता है
जन जन का पारावार बहा करता है

जो बनता है दीवार, ढहा करता है
सागर में ऐसा ज्वार उठा करता है
तल के मोती का प्यार लुटा करता है !
साँसें शीतल समीर भी बड़वानल भी
सांसें हैं मलयानिल भी दावानल भी
इसलिये सहेजो इनको तुम चुन-चुन कर
इसलिये सँजोओ इनको तुम गिन-गिन कर
अब तक गफ़लत में जो खोया सो खोया
अब तक ऊसर में जो बोया सो बोया
अब तो साँसों की फसल उगाओ भाई
अब तो साँसों के दीप जलाओ भाई
तुमको चन्दा से चाव हुआ तो होगा
तुमको सूरज ने कभी छुआ तो होगा
उसकी ठण्डी गरमी का क्या कर डाला ?
जलनिधि का आकुल ज्वार कहाँ पर पाला ?
मरुथल की उड़ती बालू का लेखा दो ।
प्यासे अधरों की अकुलाई रेखा दो ।
तुमने पी ली कितनी संध्या की लाली ?
ऊषा ने कितनी शबनम तुममें ढाली ?
मधुरितु को तुमने क्या उपहार दिया था ?
पतझर को तुमने कितना प्यार किया था ?
क्या किसी साँस की रगड़ ज्वाल में बदली ?
क्या कभी वाष्प-सी साँस बन गई बदली ?
फिर बरसी भी तो कैसी कितनी बरसी ?
चातकी बिचारी फिर भी कैसी तरसी ?
साँसों का फौलादी पौरुष भी देखा ?
कितनी साँसों ने की पत्थर पर रेखा ?
जितनी भी साँसें पथ के रोड़े बिनतीं

हर साँस-साँस की देनी होगी गिनती
तुम इनको जोड़ो बैठ कहीं एकाकी
बेकार गईं जो उनको कर दो बाकी
जो शेष बचें उनका मीजान लगा लो
जीवित रहने का सब अभिमान जगा लो
मृत से जीवित का अब अनुपात बता दो,
साँसों की सार्थकता का मुझे पता दो !
लज्जित क्यों होने लगा गुमान तुम्हारा ?
क्या कहता है बोलो ईमान तुम्हारा ?
क्या समझे थे तुम सचमुच ही जीते हो ?
तुम खुद ही देखो भरे या कि रीते हो
जीवन की लज्जा है तो अब भी चेतो
जो जंग लगी उसको खराद पर रेतो,
जितनी बाकी हैं सार्थक उन्हें बना लो
पछताओ मत आगे की रकम भुना लो
अब काल न तुमसे बाजी पाने पाये
अब एक साँस भी व्यर्थ न जाने पाये
तब जीवन का सच्चा सम्मान रहेगा,
आने वाली पीढ़ी को ज्ञान रहेगा
यह जिया न अपने लिए मौत से जीता
यह सदा भरा ही रहा न ढुलका, रीता

•

'नीरज'

साँसों के मुसाफ़िर के नाम

इसको भी अपनाता चल
उसको भी अपनाता चल
राही हैं सब एक डगर के सब पर प्यार लुटाता चल !

बिना प्यार के चले न कोई, आँधी हो या पानी हो
नई उमर की चूनरी हो या कमरी फटी पुरानी हो
तपे प्रेम के लिए धरित्री, जले प्रेम के लिए दिया
कौन हृदय है नहीं प्यार की जिसने की दरबानी हो
तट तट रास रचाता चल
पनघट पनघट गाता चल
प्यासी है हर गागर, दिल का गंगाजल छलकाता चल !

कोई नहीं पराया सारी धरती एक बसेरा है
इसका खेमा पश्चिम में तो उसका पूरब डेरा है
श्वेत बरन या श्याम बरन हो, सुन्दर या कि असुन्दर हो
सभी मछलियाँ एक ताल की, क्या मेरा, क्या तेरा है
गलियाँ गाँव गुँजाता चल
पथ पथ फूल बिछाता चल
हर दरवाजा राम दुआरा सबको शीश झुकाता चल !

हृदय हृदय के बीच खाइयाँ लहू बिछा मैदानों में
घूम रहे हैं युद्ध सड़क पर, शान्ति छिपी श्मशानों में

जंजीरें कट रहीं, मगर आज़ाद नहीं इन्सान अभी
दुनियाँ भर की खुशी क़ैद है चाँदी-जड़े मकानों में
सोई किरन जगाता चल
रूठी सुबह मनाता चल
प्यार नक़ाबों में न बन्द हो, हर घूँघट खिसकाता चल !

नयन नयन तरसें सपनों को, आँचल तरसें फूलों को
आँगन तरसें त्यौहारों को, गलियाँ तरसें झूलों को
किसी होठ पर बजे न वंशी, किसी हाथ में बीन नहीं
उम्र समुन्दर की दे डाली किसने चन्द बबूलों को
बिखरे तार मिलाता चल
समतल धरा बनाता चल
इक-रंग बने दुरंगी दुनियाँ, ऐसा रंग उड़ाता चल !

बिकाबिकी सब ओर मचा है आने औ' दो आनों पर
अस्मत बिके दुराहों पर तो प्यार बिके दूकानों पर
डगर डगर पर मन्दिर मस्जिद, क़दम क़दम पर गुरुद्वारे
भगवानों की बस्ती में है, ज़ुल्म बहुत इन्सानों पर
खिड़की हर खुलवाता चल
साँकल हर कटवाता चल
इस पर भी उजियार न हो तो दिल का दिया जलाता चल !

नील की बेटी के नाम

रात का है वक्त, चारों ओर छायी हैं घटाएँ
साँप सी फुफकारती हैं चल रही ठण्डी हवाएँ।

आसमाँ पर एक तारा तक नज़र आता नहीं है
ज़ुल्म का जैसे जमीं पर दीप जल पाता नहीं है !
है लगी रिमझिम झड़ी दीवार कच्ची टूटती है
साँस जनयुग में कि पूँजीवाद की ज्यों छूटती है।
एक सन्नाटा कि हर आवाज हर अहसास चुप है
एटमी विष चाट ज्यों हिरोशिमा की लाश चुप है।
बोल उठता है कहीं लेकिन कभी कोई पपीहा
दे रहा ज्यों प्यार को आवाज भारत का मसीहा।
बूँद के आघात को यूँ सह रही है रातरानी
सह रही ज्यों गोलियों की मार गोआ की जवानी।
हैं पड़े लाखों दरारें भूमि के गोरे वदन में
जिस तरह लिपटे हुए हैं घाव अलज़ीरी कफ़न में
और ऐसे में बिठाये सामने लो थरथराती।
नील की बेटी तुझे मैं लिख रहा हूँ प्रेमपाती !
कौन हूँ, क्या हूँ, बताने की ज़रूरत कुछ नहीं है
सिर्फ इतना जान कवि हूँ, हर ज़मी मेरी ज़मी है !
प्रिय मुझे जितना कि भारतवर्ष जो मेरा वतन है
कम नहीं उससे तनिक प्यारा मुझे तेरा चमन है !
उस चमन पर ही मगर है आँधियों का आज घेरा
नील की बेटी बता कैसे न धड़के प्राण मेरा ?
विश्व भर का आइना जो वह कि शायर का जिगर है
हो कहीं पर हर हृदय के दर्द की उसको खबर है।
अजनबी तू किन्तु तेरी चाह मुझको जानती है
मैं न जानूँ पर क़लम मेरी तुझे पहचानती है।
और फिर तेरी हसीना नील, गंगा से हमारी
कर चुकी है बहुत पहले दोस्ती यह सृष्टि सारी !
वे पिरामिड ढूह वे ममियाँ वही सदियों पुरानी
ताड़ की पाँतें खजूरों की क़तारें आसमानी

काफ़िले वे, ऊँट वे, वे घंटियाँ वंशी विजन की
प्यास रेगिस्तान की गर्मी बगूलों के हवन की।
मस्जिदें जिनकी अजानों से सुबह जग में हुई है
वे रूई के फूल पाकर रेत जिनको हँस गयी है।
सभ्यता इनसे हजारों साल पहले मिल चुकी है
वह कली है कौन घर तेरे नहीं जो खिल चुकी है।
जबकि पश्चिम की अकल अँगड़ाइयाँ हो ले रही थी
तब खड़ी तू सर्द मुर्दों को जवानी दे रही थी।
जाति यूरप की न ढँकना देह तक जब जानती थी
आदमी का वस्त्र तब इन्सानियत तू मानती थी
पर उसी इन्सानियत पर डालने को आज डाका
कुछ लुटेरे मिल तुझे दिखला रहे भय गोलियों का।
पर न घबराना कि तेरा पुत्र नासिर सा जवाँ है
साथ सारा एशिया है, साथ सब हिन्दोस्ता है!
हाथ जो तुझ पर उठेगा हम उसे झकझोर देंगे
जंग की जो भी करेगा बात वह मुँह तोड़ देंगे!
चोर जो आज़ादियों का, चोर वह ईमान का है
शत्रु है जो शान्ति का, वह शत्रु हर इन्सान का है!
हम बता देंगे कि कितनी नीम की गहरी सतह है
हम बता देंगे कि कैरों में न चोरों को जगह है!
हम बता देंगे कि धरती पौंड में बँटती नहीं है
धार पानी की कभी तलवार से कटती नहीं है!
मिस्र के ऊपर हुआ हर वार हम पर वार होगा
मिस्र का त्यौहार हर आजाद का त्यौहार होगा!
क्योंकि पानी नील का नल कूप का पानी नहीं है
अश्क रेगिस्तान का है और बेमानी नहीं है।
और बस्ती मिस्र की मजदूर की है एक बस्ती
हो गई मिट्टी जहाँ फ़ारूक सी हर एक हस्ती।

यह जली बस्ती अगर सारा जहाँ जलने लगेगा
फ्रांस से लन्दन तलक हर दर-मकाँ जलने लगेगा!
मिस्र उठ औ' बाँध अपने बाँध तू बेखौफ़ होकर
बीन सूरज चाँद के काने किरन के बीज बोकर
हल चला ऐसे कि रेगिस्तान सारे लहलहायें
वे नये इन्सान गढ़ ममियाँ कि सोई जाग जायें!
फिर चले वे काफ़िले तहज़ीब के तेरे चमन से
पूछती दुनिया फिरे जिनका पता भू से गगन से।
नील फिर लहराय सीना स्वेज का इतना बड़ा हो।
जग दिखे छोटा अगर आकर जहाजों में खड़ा हो।
है जमाने की नज़र बदली, हवा बदली हुई है
टूटने को खुद-बखुद जंजीर हर मचली हुई है।
है जगा इन्सान करवट ले रही है धूल रानी
खिल रहे हैं फूल जनता कर रही है बागवानी!
नर्गिसी हर आँख उगते सूर्य पर ठहरी हुई है
हँस रहा आँगन मगन हर ब्याहुली देहरी हुई है।
हर अधर पर गीत हर घूँघट सितारों से जड़ा है
हर गली डोली सजी, हर द्वार पर दूल्हा खड़ा है!
हर चमन आबाद खेतों बीच हल-हँसिया पड़ा है
कह रहा है ध्वंस से निर्माण दुनिया में बड़ा है।
आदमी के खून की अब हाट जुड़ सकती नहीं है
शान्ति की दीवार तोपों से उखड़ सकती नहीं है
देखना है जुल्म की रफ्तार बढ़ती है कहाँ तक
देखना है बमों की बौछार बढ़ती है कहाँ तक
देखना है डालरी झंकार में कितना असर है
उम्र नफ़रत की बड़ी या प्यार की ज्यादा उमर है!
नील की बेटी न घबराना समझ से काम लेना
गर उठे तूफ़ान, हिन्दुस्तान को आवाज देना!

अब युद्ध नहीं होगा

मैं सोच रहा हूँ अगर तीसरा युद्ध छिड़ा
इस नयी सुबह की नयी फ़सल का क्या होगा ?
मैं सोच रहा हूँ ग़र ज़मीन पर ख़ून उगा
मासूम हलों की चहल पहल का क्या होगा ?
ये हँसते हुए गुलाब, महकते हुए चमन
जादू बिखराती हुई रूप की ये कलियाँ
ये मस्त झूमती हुई बालियाँ धानों की
ये शोख सजग शरमाती गेहूँ की गलियाँ
गदराते हुए अनारों की यह मन्द हँसी
यह पेंगें बढ़ा बढ़ा अमियों का इठलाना
यह नदियों का लहरों के बाल खोल चलना
यह पानी के सितार पर झरनों का गाना
मैनाओं की नटखटी, ढिठाई तोतों की
यह शोर मोर का, भौंर-भृङ्ग की यह गुनगुन
बिजली की कड़क-तड़क, बदली की चटक-मटक
यह ज़ोत जुगनुओं की, यह झिंगुर की झुन-झुन
किलकारी भरते हुए दूध से ये बच्चे
निर्भीक उछलती हुई जवानों की टोली
रति को शरमाती हुई चाँद सी ये शक़्लें
संगीत चुराती हुई पायलों की बोली
आल्हा की ललकार, थाप यह ढोलक की
सूरा मीरा की सीख, कबीरा की बानी
पनघट की भरी गगरियों की यह छेड़-छाड़
राधा की कान्हा से छुप छुप आनाकानी
क्या इन सब पर ख़ामोशी मौत बिछा देगी
क्या धुंध-धुआँ बनकर सब जग रह जायेगा ?

क्या कूकेगी कोयलिया कभी न बगिया में
क्या पपीहा फिर न पिया को पास बुलायेगा
मैं सोच रहा : युग जो इतिहास लिख रहा
क्या रक्त धुलेगा उसकी सारी स्याही में ?
क्या लाशों के पहाड़ पर सूरज उतरेगा ?
क्या चाँद सिसकियाँ लेगा ध्वंस-तबाही में ?
क्या ख़िज़ा चाट लेगी शबाब इन फूलों का
क्या धूप अंधेरे की दासी हो जायेगी ?
क्या क्रान्ति पहन लेगी ज़ंजीरें सोने की
क्या शान्ति मरघटों में छिपकर सो जायेगी ?
क्या पी जायेगा रेगिस्तान नर्मदा को
क्या गङ्गा का सैलाब भाप बन जायेगा ?
झुक जायेगा क्या शीश हिमालय योगी का
विन्ध्याचल में पतझार दुबारा आयेगा ?
मैं सोच रहा हूँ फूल रहा जो खेतों में
उस बचपन को गोद मिलेगी क्या संगीनों की ?
मिट कर मिट्टी के सर पर जो धर रहा ताज
उस श्रम को उम्र मिलेगी टैंक-मशीनों की ?
जो अभी अभी सिन्दूर दिये घर आयी है
जिसके हाथों की मेंहदी अब तक गीली है
घूंघट से बाहर आ न सकी है अभी लाज
हल्दी से जिसकी चूनर अब तक पीली है
क्या वह अपनी लाड़ली बहिन साड़ी उतार
चूंड़ियाँ बेचेगी अपनी जाकर बाजारों में ?
जिसकी छाती से फूटा है मातृत्व अभी
वह मां क्या दफ़नायेगी दूध मज़ारों में ?
क्या गोली की बौछार मिलेगी सावन को ?
क्या डालेगा विनाश झूला अमराई में ?

क्या उपवन की डालों में फूलेंगे अंगार ?
क्या घृणा बजेगी भौरों की शहनाई में ?
असहाय बुढ़ापा तड़पेगा क्या मरघट में ?
बारूद करेगी क्या शृङ्गार जवानी का ?
क्या मानवता पर विजयी दानवता होगी ?
क्या होगा अन्त पुराना नई कहानी का ?
जब घायल सीना लिए एशिया तड़पेगा
तब बाल्मीकि का धैर्य न कैसे डोलेगा ?
भूखी कुरान की आयत जब दम तोड़ेगी ?
तब क्या न खून फ़िरदौसी का फिर खौलेगा ?
सुन्दरता की जब लाश सड़ेगी सड़कों पर
साहित्य पड़ा महलों में कैसे सोएगा ?
जब क़ैद तिजोरी में रोटी हो जायेगी
तब क्रान्ति बीज कैसे न पसीना बोएगा ?
हँसिये का जंग छुड़ाने में रत है किसान
है नयी नोक दे रहा मजूर कुदाली को
नभ बसा रहा है नए सितारों की बस्ती
भू लिए गोद में नए खून की लाली को।
बढ़ चुका बहुत रथ आगे अब निर्माणों का
बम्बों के दलदल से अवरुद्ध नहीं होगा
है शान्ति शहीदों का पड़ाव हर मंज़िल पर
अब युद्ध नहीं होगा अब युद्ध नहीं होगा !

वीरेन्द्र मिश्र

ज़िन्दगी गा रहा हूँ

गीत में विश्वास है जो दे रहा मुझको सहारा
गीत में है दर्द दिल का, है नहीं जिसका किनारा
गीत में उल्लास है वह जोकि सपनों ने निहारा
गीत में है मीत मन का, गीत ने जिसको सँवारा
गीत मेरा मीत, मुझसे तुम अलग उसको न देखो
जबकि एकाकार दोनों एक के यश को न देखो
शौकिया लिखता नहीं हूँ, गीत है कर्तव्य मेरा
गीत है गत का कथानक गीत है भवितव्य मेरा
जन्म से मुझको मिली है जो विरासत में निशानी
वह निशानी गा रहा हूँ, मन नहीं बहला रहा हूँ !

जब मिली अनुभूति मुझको, गीत फूटा, विश्व झूमा
जान पाया कौन पर मैं, कहाँ भटका, कहाँ घूमा
कब तड़प कर रह गया, कब आह की, कब डगमगाया
कब नयन के नीर में डूबा कि कब वह भी न आया
एक रचना तब हुई, जब शूल चुभ बैठा चरण में
एक रचना तब हुई, जब शूल को देखा सुमन में
गीत है तस्वीर मन बहलाव का साधन नहीं है
गीत है अनिवार्य जीवन-क्रम, मनोरंजन नहीं है
क़ैद थी जो युग-युगों से कन्दराओं-खाइयों में
मौन वाणी गा रहा हूँ, मन नहीं बहला रहा हूँ !

जिन्दगी से दूर जाकर जो कला को है सजाता
मैं नहीं वह हूँ, मुझे वह गीत लिखना है न आता
गीत सुनना चाहते हो तो उतर आओ धरा पर
चैन से बैठो नहीं, समझो ज़रा, क्या चीखता स्वर
किस तरह यह भाव आया, क्यों कहाँ से पंक्ति आयी
किस जलन ने ताप ने है छन्द की झाँकी सजाई
'वाह' तुमसे तब निकलती 'आह' जब करता पसीना
गीत-कारीगर सुखा शोणित, तुम्हें देता नगीना
इस नगीने की चमक की, गीत के भोले श्रमिक की
मैं कहानी गा रहा हूँ, मन नहीं बहला रहा हूँ !

लेखनी जब हाथ में है मैं किसी से क्यों डरूँगा
आज मैं अपना स्वयं ही घर बनाऊँगा, रहूँगा
तुम कहोगे 'यह कहो तुम' मैं कहूँगा 'अब नहीं यह'
जबकि मैं हूँ जाग बैठा, तब नहीं यह तब नहीं वह
हाथ में परचम लिये हूँ आँख में शबनम भरे हूँ
प्राण में विश्वास जीवित, कंठ में सरगम भरे हूँ
भोर का वातावरण है, गा रहा हूँ मैं प्रभाती
दूर ढलती रात की है मन्द सी पदचाप आती
आज जो संघर्ष है, वह है सबेरे की जवानी
मैं जवानी गा रहा हूँ, मन नहीं बहला रहा हूँ !

शान्ति बाहर भटकती है युद्ध के मठ से निकलकर
प्रेत देवी-देवता बन नाचते, चोला बदल कर
बज रहे घंटे कि शोषण दूर तक देता सुनाई
द्वार प्रहरी डोलता है बाँध जनता को कमाई
पुण्य-मंदिर पाप पुजता और बाहर घोष होता
आरती इसकी न होगी, भीड़ में है रोष होता

म्लान जनता को इशारा कर सुलगता न्याय का स्वर
देश की यह भाग्य-लक्ष्मी है, इसी का स्वर्ण मंदिर
क्रान्ति-भैरव गूँजता है विश्व ने करवट बदल दी
दानवी अपने तिमिर के साथ मंदिर छोड़ जल्दी
दूर देहरी से खड़ी है जो सृजन की मुक्ति देवी
वह भवानी गा रहा हूँ मन नहीं बहला रहा हूँ !

मेरा देश

अब गाता हूँ
कोई अंधकार की चादर मेरी ओर बढ़ाए ना
जलता दीप है ये, इससे प्यार मुझको !
कोई मेरी खुशहाली पर खूनी आँख उठाए ना
मेरा देश है ये इससे प्यार मुझको !

इसकी मिट्टी में गर्मी है काल की, इसमें ताकत है उठते भूचाल की
इतिहासों की गाथा इसके मूल में, एक चमकती दुनियाँ इसकी धूल में
इसके पवन झकोरों में वह प्यास है, सिर्फ़ बहारों को जिसका आभास है
संझा और सकारे ऐसे हैं कहाँ, सूरज चाँद सितारे ऐसे हैं कहाँ
श्याम घटा बिजली बरखा मन भावनी, रिमझिम बूंद फुहार चँदनिया सावनी
आल्हा की हुङ्कार रमायन की कथा, वृन्दावन के रास गोपियों की व्यथा
त्यौहारों की धूम दिवाली के दिये, होली के रंगों बिन कोई क्या जिये
मनीपुरी के नृत्यों की चंचल परी, और भरत नाट्यम पर छिड़ती बाँसुरी
ये सब मेरी दुनियाँ की आवाज़ है, इस पर ही तो होता मुझको नाज़ है
लो अब गाता हूँ
कोई हँसती गाती राहों में, अंगार बिछाए ना
पथ की धूल है ये, इसी से प्यार मुझको

कोई मेरी खुशहाली पर खूनी आँख उठाए ना
मेरा देश है ये, इससे प्यार मुझको !

झूमर हँसली पायल नूपुर रागिनी, काजल मेंहदी म्हावर क्वाँरी चाँदनी
शुभ शकुनों के मंगल-कलश दुआर पर, अनब्याहे दृग उठते बंदनवार पर
और एक दिन जाती घर से लाडली, कुमकुम की डोली में चम्पा की कली
देश कहीं परदेश कहीं किसकी लगन किसकी ममता डोरी मन किसमें मगन
और एक दिन संघर्षों की राह पर, जाता है परिवार बिलखता आह पर
साथ चली शमशान, उमंगों पर कफ़न प्यासे मनवा प्यासे ही हो गये दफ़न
लेकिन इसका अर्थ नहीं होता मरण, मुझको जाना है न किसी की भी शरण
हंसी उडाने वाले जाते भूल हैं, मेरे मरघट में भी उगते फूल हैं
इन चरणों में अब भी गति की प्यास है, इन अधरों पर तो अब भी उल्लास है
लो अब गाता हूँ
कोई अंधकार की चादर मेरी ओर बढ़ाए ना
जलता दीप है ये, इससे प्यार मुझको
कोई मेरी खुशहाली पर खूनी आँख उठाए ना
मेरा देश है ये, इससे प्यार मुझको !

कौन गया है रेखाओं को चीर कर, रांगोली से बनी हुई तस्वीर पर
बासंती मलयानिल खुलकर नाचती, राग भरी सी रूपम 'गीतम' बाँचती
संस्कृति की पहली डाली है झूमती, नयी गुलाबी कला जिसे है चूमती
फूल रहे अंबवा, बोझिल अमराइयाँ, मीठी-मीठी पीर भरी अंगड़ाइयाँ
बरखा में बिरही की ममता जागती, हेर-हेर बिरहिन की निंदिया भागती
सब अपनी-अपनी प्रेमाओं की याद में, डूबे जाते हैं गहरे अवसाद में
क्वारी हवा गगन को देती छेड़ है, देखो टूट चली खेतों की मेड़ है
वीराने से बादल करता प्यार है, पनघट पर बिजली की चीख पुकार है
जीवन की जमुना में जिसकी याद है, उसकी लहरों पर मुरली का नाद है
लो अब गाता हूँ
कोई सांवरिया को उसकी राधा से बिछुड़ाए ना

लीला धाम है ये, इससे प्यार मुझको
कोई फूलपात की कश्मीरी शबनम उजड़ाए ना
भीगी आँख है ये, इससे प्यार मुझको !

किसी पेड़ को बना नसैनी वेश में, गंध चली आती है नभ के देश में
फिर जैसे अम्बर से झरते फूल हैं, भू की स्वप्नांजलि में जाते झूल हैं
लगता है ये आयी मीरा बावरी, नर्तित गुंजित जीवित राधा सांवरी
'और सुनो भाई साधो' जुलहा बोलता, दास कबीरा विष में अमृत घोलता
नभ के पर्दे जलते सूरज दीप से, चले संदेशे इन्द्रराज के द्वीप से
मेघदूत ज्यों कालिदास के राज के, छिड़ते मेघ मल्हार किसी के साज के
तानसेन संग आता बैजू बावरा, सुन जिसको निज सुधबुध खो देती धरा
बरसत नैन हमारे सूरा झूमता, चित्रकूट के वन में तुलसी घूमता
गीतकार से कहता मैं तुम भी उठो, झूमो मत पिछली लय में, आवाज दो
लो अब गाता हूँ
कोई मेरे सरगम के पर्दों में आग लगाए ना
मेरा गीत है ये, इससे प्यार मुझको
कोई मरघट के मरुथल में छंदों को दफ़नाए ना
भैरव राग है ये, इससे प्यार मुझको !

सुख का साया हो या हो दुख की बदली, मेरी दुनियाँ औरों से सौ बार भली
तुम भी सुनते होगे इस संदेश को, नयी उमर है मिली पुराने देश को
जाऊँगा अपनी मिट्टी को पूजता, देखूंगा अब नहीं स्वप्न को टूटता
सिर माथे लेना है धरती-धूल को, जिसने सिरजा है मधुबन के फूल को
लेकिन यह क्या होती हैं आवाज क्या? धुवाँ आग चीत्कार ध्वंस है, राज क्या ?
देशों में होती है खींचातान क्यों ? शीत युद्ध से दुनियाँ है हैरान क्यों ?
मेरे सुख-सपनों पर किसका हाथ है ? क्यों पीछे चलती छाया सी रात है ?
तोप लगाई है किसने इन्सान पर, एटम गिरना है क्या हिन्दुस्तान पर ?
नहीं, नहीं, मैं नहीं इसे होने दूँगा, मैं अपने सब प्रश्नों के उत्तर लूँगा

जो अब गाता हूँ
कोई मेरी कंगाली पर अपना महल उठाए ना
ये जो झोपड़ी है, इससे प्यार मुझको
मैंने खींची लक्ष्मण-रेखा कोई पाँव बढ़ाए ना
मेरा देश है ये, इससे प्यार मुझको !

•

रामावतार त्यागी

अपनी क़लम नहीं बेचूँगा

मेरे सपनों को सूली पर लटका दो तुम बड़ी खुशी से
पर मैं बेईमान समय को अपना अहम् नहीं बेचूँगा !

कुछ भी मुझे कहेगी दुनियाँ
लेकिन कायर नहीं कहेगी
मैं न रहूँगा यह तो सच है
पर मेरी आस्था रहेगी

मेरी खुशियों को चाहे जब जिन्दा मरघट में दफना दो,
लेकिन मैं बदचलन पतन को अपना जनम नहीं बेचूंगा ।

दीपक बिक सकता है जिसका
अंतर ज्योतिर्मान नहीं है
पर अंगारे को खरीदना
दुनियाँ में आसान नहीं है

मेरे गीत रहें जीवन भर चाहे कारावास भोगते,
लेकिन मैं गुमराह स्वर्ण को अपनी कलम नहीं बेचूंगा !

दूकानों में होड़ लगी है
ईमानों को खरीदने की
रेगिस्तानों ने जिद पकड़ी
उद्यानों को खरीदने की

मेरे दर्पण को यदि सम्भव हो तो खंड खंड कर डालो,
लेकिन मैं तन की इच्छा पर मन का नियम नहीं बेचूंगा !

कल्पित किंवदन्तियों जैसी
मेरी जीवन कथा नहीं है
मेरी रचना विज्ञापन के
स्वामी की अनुगता नहीं है
सूनी काल कोठरी में ही सारी उम्र बीता दूँगा मैं,
लेकिन किसी मोह को अपने कवि का धरम नहीं बेचूँगा !

सारी रात जागना होगा

चाँदो की उर्वशी न कर दे,
युग के तप-संयम को खंडित !
भर कर आग अंक में मुझको,
सारी रात जागना होगा।

सपनों का अपराध नहीं है,
मन को ही भा गई उदासी।
ज्यादा देर किसी नगरी में,
रुकते नहीं सन्त-संन्यासी।

जो कुछ भी माँगेंगे दूँगा,
ये सपने तो परम हंस हैं।
मुझको नंगे पाँव धार पर,
आँखें मूंद भागना होगा।

गागर क्या है कण्ठ लगाकर,
जल को रोक लिया माटी ने।

जीवन क्या है-जैसे स्वर को,
वापिस भेज दिया घाटी ने।

गीतों का दर्पण छोटा है,
जीवन का आकार बड़ा है।
जीवन की खातिर गीतों को,
अब विस्तार माँगना होगा।

चुनना है बस दर्द सुदामा,
लड़ना है अन्याय कंस से,
जीवन मरणासन्न पड़ा है,
लालच के विष भरे दंश से।

गीता में जो सत्य लिखा है,
वह भी पूरा सत्य नहीं है।
चिन्तन की लछमन-रेखा को,
थोड़ा आज लाँघना होगा॥

गंगाराम 'पथिक'

शायद कोई तूफ़ान

शायद कोई तूफ़ान मचलने वाला है
युग जीवन का इतिहास बदलने वाला है।

भूले भटके अरमान जहाँ लुट जाते हैं
सपनों के शव पर सौदागर मँडराते हैं
जर्जर जीवन के गायक भारी स्वर लेकर
गाते क्या हैं, मजबूरी को बहलाते हैं
साँसों का सरगम स्वयं धधकती ज्वाला है
तम को मालूम नहीं है, क्या उजियाला है।

धरती के दिल की धड़कन ने बतलाया है
मिट्टी के कण-कण में विद्रोह समाया है
सन्नाटे की सूनी गलियों से टकरा कर
आतंक प्रलय के दरवाजे तक आया है
पाषाणों का अभिमान पिघलने वाला है
शायद अन्तिम परिणाम निकलने वाला है।

●

गजानन माधव मुक्तिबोध

मुझे क़दम-क़दम पर

मुझे क़दम-क़दम पर
चौराहे मिलते हैं
बाँहें फैलाये !

एक पैर रखता हूँ
कि सौ राहें फूटती हैं
व मैं उन सब पर से गुज़रना चाहता हूँ
बहुत अच्छे लगते हैं
उनके तजुर्बे और अपने सपने
सब सच्चे लगते हैं
अजीब-सी अकुलाहट दिल में उभरती है
मैं कुछ गहरे में उतरना चाहता हूँ
जाने क्या मिल जाये !

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हर-एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मिति में विमल सदानीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य-पीड़ा है
पल-भर मैं सबमें से गुज़रना चाहता हूँ,
प्रत्येक उर में से तिर आना चाहता हूँ,

इस तरह ख़ुद ही को दिये-दिये फिरता हूँ,
अजीब है ज़िंदगी !
बेवकूफ़ बनने के खातिर ही
सब तरफ़ अपने को लिये-लिये फिरता हूँ
और यह देख-देख बड़ा मज़ा आता है
कि मैं ठगा जाता हूँ···
हृदय में मेरे ही
प्रसन्न-चित्त एक मूर्ख बैठा है
हँस-हँस कर अश्रुपूर्ण, मत्त हुआ जाता है,
कि जगत् स्वायत्त हुआ जाता है ।

कहानियाँ ले कर
और मुझको कुछ देकर ये चौराहे फैलते
जहाँ ज़रा खड़े हो कर
बातें कुछ करता हूँ···
···उपन्यास मिल जाते हैं ।
दुख की कथाएँ, तरह-तरह की शिकायतें,
अहंकार-विश्लेषण, चारित्रिक आख्यान,
ज़माने के जानदार सूरे व आयतें
सुनने को मिलती हैं ।

कविताएँ मुस्करा लाग-डांट करती हैं,
प्यार-बात करती हैं ।
मरने और जीने की जलती हुई सीढ़ियाँ
श्रद्धाएँ चढ़ती हैं !

घबराये प्रतीक और मुस्काते रूप-चित्र
ले कर मैं घर पर जब लौटता···

उपमाएँ, द्वार पर आते ही कहती हैं कि
सौ बरस और तुम्हें
जीना ही चाहिये ।
घर पर भी पग-पग पर चौराहे मिलते हैं,
बाँहें फैलाये रोज मिलती हैं सौ राहें
शाखा-प्रशाखायें निकलती रहती हैं
नव-नवीन रूप-दृश्य वाले सौ-सौ विषय
रोज़-रोज़ मिलते हैं···
और, मैं सोच रहा कि
जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
कमी है विषयों की
वरन यह कि आधिक्य ही उनका
उसको सताता है,
और वह ठीक चुनाव नहीं कर पाता है ।

पता नहीं·····

पता नहीं कब, कौन, कहाँ, किस ओर मिले,
किस साँझ मिले, किस सुबह मिले !!
यह राह ज़िन्दगी की
जिससे जिस जगह मिले
है ठीक वहीं, बस वहीं अहाते मेंहदी के
जिनके भीतर
है कोई घर
बाहर प्रसन्न पीली कनेर

बरगद ऊँचा, ज़मीन गीली
मन जिन्हें देख कल्पना करेगा जाने क्या !!
तब बैठ एक
गम्भीर वृक्ष के तले
टटोलो मन, जिससे जिस छोर मिले,
कर अपने-अपने तप्त अनुभवों की तुलना
घुलना मिलना !!

यह सही है कि चिलचिला रहे फ़ासले,
तेज़ दुपहर भूरी
सब ओर गरम धार-सा रेंगता चला
काल बाँका-तिरछा;
पर, हाथ तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ
फैलेगी बरगद छाँह वहीं
गहरी-गहरी सपनीली-सी
जिसमें खुलकर सामने दिखेगी उरस्-स्पृशा
स्वर्गीय उषा···
लाखों आँखों से, गहरी अन्तःकरण तृषा,
तुमको निहारती बैठेगी
आत्मीय और इतनी प्रसन्न,
मानव के प्रति, मानव के
जी की पुकार
जितनी अनन्य !
लाखों आँखों से तुम्हें देखती बैठेगी
वह भव्य तृषा
इतने समीप
ज्यों-लाली-भरा पास बैठा हो आसमान

आँचल फैला,
अपनेपन की प्रकाश-वर्षा
में रुधिर-स्नात हँसता समुद्र
अपनी गम्भीरता के विरुद्ध चंचल होगा।

मुख है कि मात्र आँखें हैं वे आलोक भरी,
जो सतत तुम्हारी थाह लिए होतीं गहरी,
इतनी गहरी
कि तुम्हारी थाहों में अजीब हलचल,
मानों अनजाने रत्नों की
अनपहचानी-सी चोरी में
धर लिए गये,
निज में बसने, कस लिये गये।

तब तुम्हें लगेगा अकस्मात्
.....
ले प्रतिभाओं का सार, स्फुलिंगों का समूह
सबके मन का
जो एक बना है अग्नि-व्यूह
अन्तस्तल में,
उस पर जो छायी है ठण्डी
प्रस्तर-सतहें
सहसा काँपी, तड़कीं, टूटीं
औ' भीतर का वह ज्वलंत कोष
ही निकल पड़ा !!
उत्कलित हुआ प्रज्वलित कमल !!
यह कैसी घटना है···
कि स्वप्न की रचना है।

कि कमल-कोष के पराग-स्तर
पर खड़ा हुआ
सहसा होता है प्रकट एक
वह शक्ति-पुरुष
जो दोनों हाथों आसमान थामता हुआ
आता समीप अत्यन्त निकट
आतुर उत्कट
तुमको कन्धे पर बिठला ले जाने किस ओर
न जाने कहाँ व कितनी दूर !!

फिर वही यात्रा सुदूर की'
फिर वही भटकती हुई खोज भरपूर की,
फिर वही आत्मचेतस् अन्तः सम्भावना,
.....जाने किन खतरों से जूझे जिन्दगी !!
अपनी धकधक
में दर्दीले फैले-फैलेपन की मिठास,
या निःस्वात्मक विकास का युग
जिसकी मानव गति को सुनकर
तुम दौड़ोगे प्रत्येक व्यक्ति के
चरण-तले जन पथ बन कर !!
वे आस्थाएँ तुमको दरिद्र करवायेंगी
कि दैन्य ही भोगोगे
पर, तुम अनन्य होगे,
प्रसन्न होगे !!
आत्मीय एक छवि तुम्हें नित्य भटकायेगी
जिस जगह, जहाँ जो छोर मिले
ले जायेगी.....
.....पता नहीं, कब, कौन, कहाँ, किस ओर मिले।

एक अरूप शून्य के प्रति

रात और दिन
तुम्हारे दो कान लम्बे-चौड़े
एक बिल्कुल सियाह
दूसरा कतई सफ़ेद !
एक न एक कान
ढाँकता है आसमान
और इस तरह ज़माने के शुरू से
आसमानी शीशे के पलंग पर सोये हो

धरती की चीखों के शब्द
पंखदार कीड़ों से बेचैन
तुम्हारे कानों के बालों पर बैठते
भिनभिनाते, चक्कर काटते हैं।
अटूट है, लेकिन नींद।
आंखें ?
धुंधला सा 'नैब्यूला' !
एक एक आँख में लाख लाख पुतलियाँ
पुतलियाँ कैसी ?
बुलबुलों की भाँति जो बनती-बिगड़ती हैं
फिर उठ बैठतीं ?
इसीलिये कोटि-कोटि कनीनिकाओं के बावजूद
कुछ नहीं दीखता,
एक एक पुतली में लाख-लाख दृष्टियाँ
असंख्य दृष्टिकोण
बनते बिगड़ते !
इसीलिए, तुम सर्वज्ञ हो नींद में।

फिर भी यशस्काय दिक्काल-सम्राट् !
तुम कुछ नहीं हो फिर भी हो सब कुछ
काल्पनिक योग्य की पूँछ के बालों को काट कर
होठों पर मूँछ लटका रक्खी है !
ओ नट-नायक
सारे जगत पर रौब तुम्हारा है !
तुमसे जो इन्कार करेगा
वह मार खाएगा
और उस मूँछ के हवाई बाल जब
बल खाते धरती पर लहरते
मँडराते चेहरों पर हमारे
तो उनके चुभते हुए खुरदरे परस से
खरोंच उभरती है लाल लाल
और हम कहते हैं कि
नैतिक अनुभूति हमें कष्ट देती है !
बिल्कुल झूठी है सठियायी
कीर्ति यह तुम्हारी ।

पर तुम भी खूब हो,
देखो तो—
प्रतिपल तुम्हारा ही नाम जपती हुई
लार टपकाती हुई आत्मा की कुतिया
स्वार्थ-सफलता के पहाड़ी ढाल पर
चढ़ती है हाँफती,
आत्मा की कुतिया
राह का हर कोई कुत्ता जिसे छेड़ता है छेंकता है
लेकिन तुम खूब हो
सूनेपन के डोह में अंधियारी डूब हो !

मात्र अनस्तित्व का इतना बड़ा अस्तित्व
ऐसे घुप्प अँधेरे का इतना तेज उजाला !
लोग-बाग
अनाकार ब्रह्म के सीमा-हीन शून्य के
बुलबुले में यात्रा करते हुए गोल-गोल
खोजते हैं जाने क्या ?
बेछोर सिफ़र के अँधेरे में बिला-बत्ती सफ़र
भी खूब है ।

सृजन के घर में तुम
मनोहर शक्तिशाली
विश्वात्मक फ़ैन्टेसी
दुर्जनों के भवन में
प्रचण्ड शौर्यवान अण्ट-शण्ट वरदान !
खूब रफ़्फ़ूदारी है !
विपरीत दोनों दूर छोरों-द्वारा पुजकर
स्वर्ग के पुल पर
चुंगी के नोकदार
भ्रष्टाचारी मजिस्ट्रेट, रिश्वतख़ोर थानेदार !

ओ रे निराकार शून्य !
महान विशेषताएँ मेरे सब जनों की
तूने उधार लीं
निज को सँवार लिया
निज को अशेष किया
यशस्काय बन गया सर्वत्र आविर्भूत !

साँझ पड़े
कदम्ब-वृक्ष-पास

मन्दिर-चबूतरे पर बैठ कर
जब कभी देखता हूँ तुझको
मुझे याद आते हैं—
भयभीत आँखों के हंस
और घाव-भरे कबूतर
मुझे याद आते हैं मेरे लोग
उनके सब हृदय-रोग
घुप्प अँधेरे घर,
पीली-पीली चिन्ता के अंगारों-जैसे पर,
मुझे याद आती है राम की शबरी
मुझे याद आती है लाल लाल जलती हुई ढिबरी
मुझे याद आता है मेरा प्यारा-प्यारा देश,
लाल लाल सुनहला आवेश।

अंधा हूँ
खुदा के बन्दों का बावला बन्दा हूँ!
परन्तु कभी-कभी अनन्त सौन्दर्य-संध्या में
शंका के काले-काले मेघ सा
काटे हुए गणित की तिर्यक् रेख सा
सरीसृप-स्रक्-सा।

मेरे इस साँवले चेहरे पर कीचड़ के धब्बे हैं
दाग़ हैं
और इस फैली हुई हथेली पर जलती हुई आग है
अग्नि विवेक की।
नहीं नहीं वह—वह तो है ज्वलन्त सरसिज!
जिन्दगी के दलदल-कीचड़ में धँस कर
वक्ष तक पानी में फँस कर

मैं वह कमल तोड़ लाया हूँ—
भीतर से इसीलिए गीला हूँ
पंक से आवृत
स्वयं में घनीभूत
मुझे तेरी बिल्कुल जरूरत नहीं है।

•

शमशेर बहादुर सिंह

य' शाम है

[ग्वालियर की एक खूनी शाम का भाव चित्र : लाल झंडे, जिन पर रोटियाँ टँगी हैं, लिये हुए मजदूरों का जुलूस । उनको रोटियों के बदले मानव-शोषक शैतानों ने गोलियाँ खिलायीं । उसी दिन—१२ जनवरी १९४४ की एक स्वर-स्मृति ।]

य' शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का ।
लपक उठीं लहू-भरी दरांतियाँ
—कि आग है, (·····)
धुंआ धुंआ
सुलग रहा
गवालियार के मजूर का हृदय ।
कराहती धरा
कि हायमय विषाक्त वायु
धूम्र-तिक्त आज
रिक्त आज
सोखती हृदय
गवालियार के मजूर का ।
गरीब के हृदय
टँगे हुए
कि रोटियाँ लिए हुए निशान

लाल लाल
जा रहे
कि चल रहा
लहू भरे गवालियार के बाज़ार में जुलूस
जल रहा
धुंआ धुंआ
गवालियार के मजूर का हृदय ।

अम्न का राग

सच्चाइयाँ
जो गंगा के गोमुख से मोती की तरह बिखरती हैं
हिमालय की बर्फीली चोटी पर चाँदी के उन्मुक्त नाचते
परों में झिलमिलाती रहती हैं
जो एक हज़ार रंगों के मोतियों का खिलखिलाता समंदर है
उमंगों से भरी फूलों की जवान कश्तियाँ
कि बसंत के नये प्रभात—सागर में छोड़ दी गई हैं ।

ये पूरब पश्चिम मेरी आत्मा के ताने-बाने हैं
मैंने एशिया की सतरंगी किरनों को अपनी दिशाओं के गिर्द
लपेट लिया
और मैं योरोप और अमरीका की नर्म आँच की धूप-छाँव पर
बहुत होले होले नाच रहा हूँ
सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर हैं
क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख-शान्ति का राग हूँ
बहुत आदिम, बहुत अभिनव !

हम एक साथ उषा के मधुर अधर बन उठे
सुलग उठे हैं
सब एक साथ ढाई अरब धड़कनों में बज उठे हैं
सिम्फ़ोनिक आनंद की तरह
यह हमारी गाती हुई एकता
संसार के पंचपरमेश्वर का मुकुट पहन
अमरता के सिंहासन पर आज हमारा अखिल लोक-प्रेसिडेंट
बन उठी है।

देखो न हकीक़त हमारे समय की कि जिसमें
होयर एक हिंदी कवि सरदार जाफ़री को
इशारे से अपने क़रीब बुला रहा है
कि जिसमें
फ़ेयाज़ खां बिटाफेन के कान में कुछ कह रहा है
मैंने समझा कि संगीत की कोई अमर लता हिल उठी
मैं शेक्सपियर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में
झलकता हुआ देख रहा हूँ
और कलिदास को वैमर के कुंजों में विहार करते
और आज तो मेरा टैगोर, मेरा हाफ़िज, मेरा तुलसी, मेरा ग़ालिब
एक-एक मेरे दिल के जगमग पावर हाउस का
कुशल आपरेटर है।

आज सब तुम्हारे ही लिए शांति का युग चाहते हैं
मेरी कुटबुट्ट
तुम्हारे ही लिये मेरे प्रतिभाशाली भाई तेजबहादुर
मेरे गुलाब की कलियों से हँसते-खेलते बच्चो
तुम्हारे ही लिए, तुम्हारे ही लिए
मेरे दोस्तो, जिनसे जिन्दगी में मानी पैदा होते हैं

और उस निश्छल प्रेम के लिए
जो माँ की मूर्ति है
और उस अमर परम शक्ति के लिये जो पिता का रूप है।

हर घर में सुख
शांति का युग
हर छोटा-बड़ा, हर नया-पुराना, हर आज-कल-परसों के
आगे और पीछे का युग
शांति की स्निग्ध कला में डूबा हुआ
क्योंकि इसी कला का नाम जीवन की भरी-पूरी गति है

मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टैचू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लाल तारा
और मेरे दिल में पेकिंग का स्वर्गीय महल
मक्का-मदीना से कम पवित्र नहीं
मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुनता हूँ
जो वोल्गा से आये
मेरी देहली में प्रहलाद की तपस्याएँ दोनों दुनियाओं की चौखट पर
युद्ध के हिरण्यकश्यप को चीर रही हैं।

यह कौन मेरी धरती की शांति की आत्मा पर कुरबान हो गया है
अभी सत्य की खोज तो बाकी ही थी
यह एक विशाल अनुभव की चीनी दीवार
उठती ही बढ़ती आ रही है
उसकी ईंटें धड़कते हुए सुर्ख दिल हैं
यह सच्चाइयाँ बहुत गहरी नींवों में जाग रही हैं
वह इतिहास की अनुभूतियाँ हैं
मैंने सोवियत यूसुफ़ के सीने पर कान रख कर सुना है।

आज मैंने गोर्की को होरी के आँगन में देखा
और ताज के साये में राजर्षि कुंग को पाया
लिंकन के हाथ में हाथ दिये हुए।
और ताल्स्ताय मेरे देहाती यूपियन होठों से बोल उठा
और अरागों की आँखों में नया इतिहास
मेरे दिल की कहानी की सुर्खी बन गया।
मैं जोश की वह मस्ती हूँ जो नेरूदा की भवों से
जाम की तरह टकराती है
वह मेरा नेरूदा जो दुनिया के शांति-पोस्टआफिस का
प्यारा और सच्चा क़ासिद
वह मेरा जोश कि दुनिया का मस्त आशिक
मैं पंत के सुकुमार छायावादी सावन-भादों की चोट हूँ।
हिलोर लेते वर्ष पर
मैं निराला के राम का एक आँसू
जो तीसरे महायुद्ध के कठिन लोह-पर्दों को
एटमी सूई-सा पार कर गया पाताल तक
और वहीं उसको रोक दिया।
मैं सिर्फ एक महान विजय को इंदीवर जनता की आँख में
जो शांति की पवित्रतम आत्मा है।

पश्चिम में काले और सफेद फूल हैं और पूरब में पीले और लाल
उत्तर में नीले कई रंग के और हमारे यहाँ चम्पई-साँवले
और दुनियाँ में हरियाली कहाँ नहीं
जहाँ भी आसमान बादलों से जरा भी पोंछे जाते हों
और आज गुलदस्तों में रंग-रंग के फूल सजे हुए हैं
और आसमान इन खुशियों का आईना है।
आज न्यूयार्क के स्काईस्क्रेपरों पर
शांति के डवों और उसके राजहंसों ने

एक मीठे उजले सुख का हलका सा अँधेरा
और शोर पैदा कर दिया है
और अब वो आर्जेन्टीना की सिम्त अतलांतिक को पार कर रहे हैं
पाल राब्सन ने नई दिल्ली से नये अमरीका की
एक विशाल सिम्फ़नी ब्राडकास्ट की है
और उदयशंकर ने दक्षिण अफ़रीका में नयी अजंता को
स्टेज पर उतारा है
यह महान नृत्य, वह महान स्वर, कला और संगीत
मेरा है यानी हर अदना से अदना इंसान का
बिलकुल अपना निजी।

युद्ध के नक़्शों को कैंची से काटकर कोरियाई बच्चों ने
झिलमिली फूल पत्तों की रौशन फ़ानूसें बना ली हैं
और हथियारों का स्टील और लोहा हज़ारों देशों को
एक-दूसरे से मिलाने वाली रेलों के जाल में बिछ गया है
और ये बच्चे उन पर दौड़ती हुई रेलों के डिब्बों की
खिड़कियों से हमारी ओर झाँक रहे हैं
वह फ़ौलाद और लोहा खिलौनों, मिठाइयों और किताबों
से लदे स्टीमरों के रूप में
नदियों की सार्थक सजावट बन गया है
या विशाल ट्रेक्टर-कम्बाइन और फ़ेक्टरी-मशीनों के हृदय में
नवीन छंद और लय का प्रयोग कर रहा है।

यह सुख का भविष्य शांति की आँखों में ही वर्तमान है
इन आँखों से हम सब अपनी उम्मीदों की आँखें सेंक रहे हैं
ये आँखें हमारे दिल में रौशन
और हमारी पूजा का फूल हैं
ये आँखें हमारे क़ानून का सही चमकता हुआ मतलब

और हमारे अधिकारों की ज्योति से भरी शक्ति हैं
ये आँखें हमारे माता-पिता की आत्मा
और हमारे बच्चों का दिल हैं
ये आँखें हमारे इतिहास की वाणी
और हमारी कला का सच्चा सपना हैं
ये आँखें हमारा अपना नूर और पवित्रता हैं
ये आँखें ही अमर सपनों की हक़ीक़त और
हक़ीक़त का अमर सपना हैं
इनको देख पाना ही अपने-आपको देख पाना है,
समझ पाना है।
हम मनाते हैं कि हमारे नेता इनको देख रहे हों।

नजरुल के लिए

—क्या देखते, जाने क्या सोचते
स्वतः अनजाने ही
तीन देशों के एक साथ नागरिक
तीन देशों की विप्लवी
एकता में कहीं
चित्त बसाये
····हमारे लिए तीन
जो तुम्हारे लिए एक···
मौन शांति दृष्टि से
क्या अवलोकन करते
जाने क्या अवलोकन करते
कौन-सी कविता लिखते

किस नये कास्मिक विद्रोह और
निर्माण की !
"···आकाशे दामामा बाजे···"
विद्रोही !
क्या अब भी दामामे बज रहे हैं
—और किस आकाश में
किन-किन धरतियों के ऊपर
मानव हृदयों में
दमामे बज रहे हैं ? !
"चल ! चल ! चल !" शुन, शुन,
शुन !
वह शोकगीत के दमामे हैं शायद :
मगर उनकी चोट कैसी कड़ी है,
विद्रोही !
न, न, न !
वो शोकगीत के न होंगे,
विजय के ही होंगे निरंतर
सदा की तरह !
क्यों तुम बोल न उठे
यकायक कभी ?
इतना कुछ हो गया
दुनिया में
हीरोशिमा नागासाकी ही नहीं
पूरा वियतनाम
पूरा चीन
पूरा अफ्रीका
पूरी अरब दुनिया
—ये सब

मानव चेतना के इतिहास में
व्याप्त हो गया :
हम अपनी साँस में
इन सबको जीते हैं ।
····और तुम ?
युद्ध समाप्त हुआ
जिसमें से और
भीष्णतर युद्ध
आरंभ हुए;
पश्चिम का दानवी रूप
प्रकट हुआ;
तीसरी दुनिया ने जन्म लिया
और आंखें खोली···!
यहूदियों अरबों ईसाइयों
की आने वाली कयामत
अभी फट तो नहीं पड़ी है
इस धरती के सर पर,
मगर इसी विस्फोट के लिए
प्राण-पन से
अमरीका
निरंतर अहर्निश
घोर अभ्यास कर रहा है !
तुम्हें खबर नहीं है ?
तुम अपने···
अपने सुदूर
विद्रोही अवचेतन में
कौन से महाकाव्य की
मूक रचना करते रहे,

नज़रुल,
जो तीनों दुनियाओं के
उत्तुंगतम थपेड़े तुम्हें
उठा नहीं पाये
तुम्हारी सहज समाधि से ?
अब तुम उसी
मूक महाकाव्य के साथ
हमारी सबकी
प्यारी धरती में
सहज ही समाधिस्थ
हो गये हो
धरती को अपनी
चेतना से
अधिक उर्वरा
करने ।
नहीं जानता अभी
इतिहास में क्या-क्या
गुल खिलेंगे
दायीं ओर से, बायीं ओर से,
कि और उनके बीच से···!
गुल
तूफानों से भीगे
और बड़े गुट्ठल और कड़े
जैसे मध्य अमरीका
के बयाबानों में होते हैं
कैक्टाई
कड़े नसों वाले कैक्टस
कठोर कांटेदार

सुर्ख और हरे और सफेद
और हीरे-नीलम-से
निर्गन्ध चमत्कार से।
और···गुल
देशों-देशों के
अक्षांशों को
अपनी सुगंध से मस्त बनाते हुए
सुर्ख गुलाब का
एक उभरता दरिया
सुर्ख गुलाबों के शिशु-मुख
उल्लास से तमतमाये हुए
आनन्द में नहाये हुए
अनेक ऊर्जाओं की
हारमनी से संगीतमय,
मानो
अपने नृत्य-दोल से
प्यारी मासूम
धरती को
उद्वेलित किये हुए
दूर तक गुलाबों का
एक ओर-छोरहीन दरिया
अरे नजरुल !
···तुम हमारे बीच में
थे न अब तक
—मगर हमें तो
अब पता चला
कि तुम हमारे ही बीच में
थे अब तक :

तुम्हारी अतिशय-अतिशय
मध्यम गुमसुम
तुम्हारा शांत महाकाव्य
हमें बेमालूम तौर से
—अपना सांस जैसे
सहज संगीत में
लिए हुए था
अब तक
और अब भी···
क्या कोई अन्तर आ गया है ?
गौर से देखो
अनुभव करो
क्या कोई अन्तर
आ गया है ?
जहाँ तुम थे
अब भी वहाँ हो
इस मौन में
अजब धूमधाम है
—हाँ यह पहले नहीं थी :
इस मूकता में
एक अजब बहार-सी है
तुम्हारे युगयुगीन
विद्रोही तराने की
—जो अभी से पहले
इतनी आबन्ताब
लिए हुए नहीं था !
याद है, याद है, याद है,
गुरुदेव ने कहा था ?

"भाई नजरुल !
तुम्हारे विद्रोही संग्रह की
पहली ही कविता को
मैं लगातार तीन दिन तक
पढ़ता रहा
और उसी से
मेरे जिन गीतों ने
जन्म लिया है
उन्हें ही तुम्हें
इस कारागृह में भेंट देने के लिए
स्वयं तुम्हारे सम्मुख
आ खड़ा हुआ हूँ
इन्हें स्वीकार कर
मुझे धन्य करो !
तुम एशिया की महाशक्ति हो,
भाई !"
और तुमने क्या कहा था,
याद है ?
"गुरुदेव,
तुम सचमुच गुरुदेव हो !"
एक महाकवि
कारा के बाहर
और एक कारा के भीतर :
तुम्हारी वाणी ने
दोनों के संगीतों को
—एक कारा के भीतर के
—एक बाहर के
—दोनों संगीतों के

स्वरों को
कहाँ केंद्रीभूत कर दिया था ?
तुम्हारा मौन मुझे बहुत अखरता है
बहुत भारी व्यंजना लगता है
बहुत स्थायी
...और फिर भी इतिहास
की धड़कन में चुपचाप
निरंतर बजता हुआ
मैं तुम्हें सुनता हूँ
और देखता हूँ
सरों की नोकीली काली हरी कतारों
में—
जहाँ भी धान का कोई
एक दाना है, वहाँ—
जहाँ भी कोई बात
"शोनार" और "शोणित" से
शुरू होगी
वहाँ तुम हो
अचल
सर झुकाये
एकटक सामने से
देखते
न देखते हुए
मूक मौन मुखर
तीनों भौतिक देशों
की आंतरिक एकता में
मुखर अचल मूक
लंबवत अशीषवत

तीनों देशों के युद्ध
वैमनस्य
नाना योजनाओं के
परे दृढ़, अचल,
एक-रूप जैसे कि···
···हाँ अल्लाह एक है
जैसे कि
उसकी मखलूक
यह प्यारी दुनिया
हम-तुम एक हैं !
इस एकता को
अपनी भवों में उठाये
अपनी आँखों में
एक पवित्र सपने की तरह आँजे
बैठे हो
अब भी बैठे हो
हमारी आँखों के सामने
हमारे हृदय आज
ढाका की उस
पावन धरती पर
श्रद्धा और प्रेम के
फूल बन कर
अर्पित हो रहे हैं
चारों ओर से
ओ
कविर्मनीषी !
ओ हमारी
सोने की मिट्टी के

प्राण !
ओ हमारे प्राणों के
अमर विद्रोही !
और हमारी विश्व-शांति के
अमर समायोजक !
—जो मौन मूक और
भुलाया हुआ-सा है
वही
हमारे साथ
साँस लेता भी रहा है
हम भी उसके साथ
बराबर निरन्तर
साँस लेते रहे हैं
और अब भी
उसकी साँस
हमारी साँस में
इतिहास बनती हुई
चल रही है !

•

विजय देव नारायण साही

हम सभी बेचकर आये हैं अपने सपने

आओ साथी,
हम सभी बेचकर आये हैं अपने सपने
उस चोटी पर
कल रात जहाँ पर बनजारों का लश्कर था।

कुहराम, शोर, बोलियाँ, दाँव बेचैन गीत
वह बड़ी नशीली रात सभी ने देखी है;
हर खेमे में रिन्दों की पागल आवाजें
हर ओर चमकते जादू सी बेसुध आँखें
हर तरफ नाचती ज्वालाएँ तलवारों सी
आतिशबाजी की तरह हँसी के फव्वारे
टूटते हुए प्यासों की घायल झनकारें
हर नये मुसाफिर के कंधे पर गर्म हाथ
हर नये अछूते सपने के लिये मान
सब यों ही था।

लगता था जैसे जीवन का आखिरी सत्य
जिसको हमने, केवल हमने ही देखा है
जादू बन कर मुट्ठी में आने वाला है :
मन में बिल्कुल ऐसा ही पावन साहस था
पैरों में बिल्कुल यही अनोखी निष्ठा थी

आँखों में कच्चे, निष्कलंक व्याकुल, सपने।

जलते माथे पर सूने कुहरे की छाया,
टूटती पसलियों में रीता, गूंजता दर्द,
खाली जेबों में हाथ दिये, सामर्थ्यहीन,
बिल्कुल यों ही,
सब कुछ खोकर
हम सभी उतर आये थे इस घाटी में।

विश्वास करो,
यह सिर्फ तुम्हारा दोष नहीं,
यह नहीं कि सिर्फ तुम्हारी किस्मत झूठी थी
यह नहीं कि केवल तुमसे ही थी चूक हुई
उस पर्वत का जादू ही ऐसा है
हम सबने उस मदहोशी में—
नकली सच्चाई के बदले अनमोल सितारे बेच दिये।

जब हम अपना सब कुछ खो कर
रोते रोते से बाहर आकर खड़े हुए
बंदिनी बहन की तरह सिर्फ
अपनी हारी आस्थाओं की
रोशनी हमें पहुँचाने बाहर तक आई
फिर दरवाजे हो गये बन्द;
इसके आगे क्या हुआ हमें भी याद नहीं।

बस इसी तरह
जब आँख खुली
इस घाटी के पीछे से था सूरज निकला।
तिरछी तिरछी किरनें फूटीं

नन्हीं दूबों की पत्तो पर
बेदाग ओस की चटकीली
बूंदों ने भोले बच्चों सा
था प्रश्न किया :
'क्या हुआ तुम्हें ?'

निश्वास छोड़
हम सभी रहे थे खड़े कुतरते होठों को ।
सचमुच जो कुछ भी हुआ बहुत अनहोना था
लगता है कुछ जैसे काँटा सा निकल गया
बस भरे गले में एक प्रश्न
रह रह उतराया आता है
'अब क्या होगा ?'

साथी अब संभव नहीं पार वापस जाना
तुम भी इस घाटी में बस कर
नन्हें, फूलों से सपनों की
छोटी सी फ़सल उगा लेना ।
बेशक, इनमें तूफानों को
मधु-सिंचित करने वाली गन्ध नहीं होगी;
ये सरल स्वप्न यदि बहुत हुआ
तो सूरज उगने पर अपनी बाँसुरी खोल कर हँस देंगे
लेकिन इनका सौदा करने
अब कभी न बनजारों का लश्कर आयेगा ।

छापा मार दस्ते

इसी तरह हर रात
ठिठुरते पठारों पर बसी हुई

इस विशाल काल-वाहिनी के नायक
उत्सव मनाते हैं
पटाखे छूटते हैं
और महताबियों के प्रकाश में
काली आकृतियाँ
इधर से उधर जाती हुई दीखती हैं
झनझनाते वाद्ययंत्रों के साथ
रह रह कर
जय-जयकार का कोलाहल
घटाटोप अँधेरे को चीरता
पहाड़ियों तक तैरता है ।

क्या तुमने एक सिसकती हुई पुकार सुनी
जैसे कोई पत्थर के नीचे दबा हुआ कराहता हो ?
बैठ जाओ, थोड़ी देर में
फिर कराह सुनाई देगी
बिल्कुल साफ़ और असंदिग्ध
और उसके साथ उसे ही डुबोने के लिए
फिर वही पठारों में काँपता हुआ
मदोन्मत्त विजयोल्लास ।

हर रात यही घटित होता है
लेकिन इस कराह को कोई नहीं जानता ।
हमने दिन में वेश बदल कर बाजारों में पड़ताल की
वे सिर्फ इतना जानते हैं
कि आसेतु पृथ्वी को जीत कर
विजेता उत्सव मनाते हैं ।
इससे अधिक वे कुछ नहीं कहते ।

तुमने छापामार दस्तों की किंवदन्तियाँ सुनी होंगी
जिनका जिक्र लोग दबी जबान से करते हैं
हमीं हैं वे
जो इस विशाल काल-वाहिनी में
रातोंरात छापे मार कर
दरारों की तलाश करते हैं
और निर्जन पहाड़ियों में लौट जाते हैं।
लगता है कि उनके सरदारों को
सचमुच हमारे अस्तित्व का ज्ञान नहीं है
क्योंकि उनके समारोहों में कोई अन्तर नहीं पड़ता
और दूरस्थ टुकड़ियों में पड़ी दरारें
दिन चढ़ते भर जाती हैं।

तुम हमारा जिक्र इतिहासों में नहीं पाओगे
और न उस कराह का
जो तुमने आज रात सुनी
क्योंकि हमने अपने को
इतिहासों के विरुद्ध दे दिया है
लेकिन जहाँ तुम्हें इतिहासों में
छूटी हुई जगहें दिखें
और दबी हुई चीख का अहसास हो
समझना हम वहाँ मौजूद थे।

●

भवानी प्रसाद मिश्र

सतपुड़ा के जंगल

सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से, ऊँघते अनमने जङ्गल !

झाड़ ऊँचे और नीचे, चुप खड़े हैं आँख मीचे
घास चुप है, काश चुप है, मूक शाल, पलाश चुप है
बन सके तो धँसो इनमें, धँस न सकती हवा जिनमें
सतपुड़ा के घने जङ्गल, ऊँघते अनमने जंगल !

सड़े पत्ते, गले पत्ते, हरे पत्ते, जले पत्ते
वन्य पथ को ढँक रहे से पंक-दल में पले पत्ते
चलो इन पर चल सको तो, दलो इनको दल सको तो
ये घिनौने, घने जंगल, ऊँघते अनमने जंगल !

अटपटी उलझी लताएँ, आदमी को खींच लाएँ
पैर को पकड़ें अचानक, प्राण को कस लें, कँपाएँ
बला की काली लताएँ, बला की पाली लताएँ
लताओं के बने जंगल, ऊँघते अनमने जंगल !

मकड़ियों के जाल मुँह पर, और सिर के बाल मुँह पर
मच्छरों के दंश वाले दाग़ काले-लाल मुँह पर
वात—झंझा वहन करते, चलो इतना सहन करते
कष्ट से ये सने जंगल, ऊँघते, अनमने जंगल !

अजगरों से भरे जंगल, अगम गति से परे जंगल
सात सात पहाड़ वाले, बड़े छोटे झाड़ वाले
शेर वाले, बाघ वाले, गरज और दहाड़ वाले
कम्प से कनकने जंगल, ऊँघते, अनमने जंगल !

इन वनों के खूब भीतर, चार मुर्गे, चार तीतर
पालकर निश्चिंत बैठे, विजन वन के बीच पैठे
झोपड़ी पर फूस डाले, गोंड तगड़े और काले
जबकि होली पास आती, सरसराती घास गाती
और महुए से लपकती मत्त करती बास आती
गूँज उठते ढोल इनके, गीत इनके, गोल इनके
सतपुड़ा के घने जंगल, ऊँघते, अनमने जंगल !

जागते अँगड़ाइयों में, खोह खड्डों खाइयों में
घास पागल, कास पागल, शाल और पलाश पागल
लता पागल, वात पागल, डाल पागल, पात पागल
मत्त मुर्गे और तीतर, इन वनों के खूब भीतर
क्षितिज तक फैला हुआ-सा, मृत्यु तक मैला हुआ-सा
क्षुब्ध कासी लहर वाला, मथित उत्थित जहर वाला
मेरु वाला, शेष वाला, शंभु और सुरेश वाला
एक सागर जानते हो ? उसे कैसा मानते हो ?
ठीक वैसे घने जंगल, ऊँघते अनमने जंगल !

धँसो इनमें, डर नहीं है, मौत का यह घर नहीं है
उतरकर बहते अनेकों, कलकथा कहते अनेकों
नदी, निर्झर और नाले, इन वनों ने गोद पाले
लाख पंछी, सौ हिरनदल, चाँद के कितने किरन दल
झूमते बन-फूल, फलियाँ खिल रही अज्ञात कलियाँ

हरित दूर्वा, रक्त किसलय, पूत पावन पूर्ण रसमय
सतपुड़ा के घने जंगल, लताओं के बने जंगल !

गीत-फ़रोश

जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ—
मैं तरह तरह के गीत बेचता हूँ
मैं सभी किसिम के गीत बेचता हूँ !

जी माल देखिए, दाम बताऊँगा
बेकाम नहीं है, काम बताऊँगा
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने
यह गीत, सख्त सरदर्द भुलाएगा
यह गीत पिया को पास बुलाएगा ।
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर पीछे पीछे अक्ल जगी मुझको
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान ।
जी आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान ।
मैं सोच समझकर आखिर अपने गीत बेचता हूँ—
जी, हाँ हुज़ूर मैं गीत बेचता हूँ !

यह गीत सुबह का है गाकर देखें
यह गीत ग़ज़ब का है, ढाकर देखें
यह गीत ज़रा सूने में लिक्खा था
यह गीत वहाँ पूने में लिक्खा था

यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है
यह गीत बढ़ाये से बढ़ जाता है
यह गीत भूख और प्यास भगाता है
जी, यह मसान में भूत जगाता है
यह गीत भुवाली की है हवा, हुज़ूर
यह गीत तपेदिक की है दवा, हुज़ूर
मैं सीधे-सादे और अटपटे गीत बेचता हूँ—
जी, हाँ हुज़ूर मैं गीत बेचता हूँ !

जी, और गीत भी हैं दिखलाता हूँ
जी, सुनना चाहें आप तो गाता हूँ
जी, छन्द और बेछन्द पसन्द करें
जी अमर गीत और वे जो तुरन्त मरें
ना, बुरा मानने की इसमें क्या बात
मैं पास रखे हूँ कलम और दावात
इनमें से भाये नहीं, नये लिख दूँ ?
जो नये चाहिये नहीं, गये लिख दूँ ?
इन दिनों कि दुहरा है कवि-धंधा
हैं दोनों चीजें व्यस्त, क़लम औ' कंधा
कुछ घंटे लिखने के, कुछ फेरी के
जी, दाम नहीं लूंगा, इस देरी के
मैं नये पुराने, सभी तरह के गीत बेचता हूँ—
जी हाँ, हुज़ूर मैं गीत बेचता हूँ !

जी, गीत जनम का लिखूं, मरन का लिखूं
जी, गीत जोत का लिखूं, शरन का लिखूं
यह गीत रेशमी है, यह खादी का
यह गीत पित्त का है यह बादी का

कुछ और डिज़ाइन भी हैं, ये इल्मी
यह लीजे चलती चीज़, नयी फ़िल्मी
यह सोच सोचकर मर जाने का गीत
यह दुकान से घर जाने का गीत
जी, नहीं दिल्लगी की इसमें क्या बात
मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन रात
तो तरह तरह के बन जाते हैं गीत
जी, रूठ रूठ कर मन जाते हैं गीत
जी, बहुत ढेर लग गया हटाता हूँ
गाहक की मर्ज़ी—अच्छा जाता हूँ
मैं बिल्कुल अन्तिम और दिखाता हूँ
या भीतर जाकर पूछ आइये आप
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप
क्या करूँ मगर लाचार हार कर गीत बेचता हूँ—
जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ !

नया त्यौहार

हाय रे संसार-सागर
बन अगर पड़ता तो मैं तुझको बनाता एक गागर
झुला कर हाथों में अपने उठाकर कन्धों से ऊपर
मैं तुझे दे मारता पलभर नचाकर सख्त भू पर
पान की सी पीक बन बहती तेरी मौजी अवस्था
बिखर जाती ठीकरे की तरह सब तेरी व्यवस्था
शोर इस दुनियाँ में मचता, मैं खड़ा हँसता कि नचता
एक क्षण में सत्य हो जाता सही ढंग से उजागर

हाय रे संसार-सागर
युग भले लग जाँय तू गागर बनाया जायगा ही
और यह त्यौहार-घट-पटकन मनाया जायगा ही
चल रही हर घड़ी कोशिश तू कि घट बन भी रहा है
और घट बनते हुए कन्धे तलक तन भी रहा है
मैं न तुझको हाथ से अपने भले ही दचक पाऊँ
किन्तु इसमें लगा हूँ बेशक कि वह पल पास लाऊँ
नाचता है वह मुहूरत शीश पर तेरे सरासर

हाय रे संसार-सागर
तू बताता है कि तेरी यह व्यवस्था है सनातन
चले आते हैं सदा से राव-रंक रिनी-महाजन
तू सुझाता है कि घर में देख लो छोटे बड़े हैं
फूल दुनियाँ में नरम हैं मगर पत्थर तो कड़े हैं
कुछ महीसुर चाहिये ही और कुछ चंडाल होंगे
कुछ मरेंगे भूख से कुछ लोग मालामाल होंगे
पाँच अँगुली हाथ की देखो कभी भी थीं बराबर ?

हाय रे संसार-सागर
तू जँचाता पुण्य उनको जो कि तेरे पाप हैं रे
वर उन्हें घोषित किये चलता कि जो अभिशाप हैं रे
ढाल कहता है उसे, तलवार बन कर धँस गयी जो
तू उसे भुज-पाश बतलाता गले को कस गयी जो
जो रगों में भिद गया है जहर बन कर धरम है रे ?
शरम है जिसको पसीना वही तेरा करम है रे ?
और तू लट्टू है अपनी इस तरह की कीमिया पर ?

हाय रे संसार-सागर
हाय सोने की किरन से सत्य को ढाँका है तूने

स्वर्ण-लाठी हाथ में लेकर समय हाँका है तूने
जा-ब-जा आँकी है तूने स्वर्ण की लिपि से गुलामी
स्वर्ण महिमा राक्षसी के रोज बढ़ते हुए हामी
अभ्रभेदी हो गया यह स्वर्ण युग-युग के छलों से
हिंस्र पशु हो स्फीत जैसे रक्त पीकर निर्बलों से
सिसकता पैरों पर इसके है पड़ा सारा चराचर

हाय रे संसार-सागर
चैत की प्रथमा में आते साल के पहले प्रहर में
उतरता हूँ आज रे संसार मैं तेरे जहर में
आज मैंने प्रलय-भेरी-स्वर सुना टूटेंगे बंधन
डूब जायेंगे प्रलय के गीत में दुनियाँ के क्रन्दन
आज लहरों में समाकर आग पानी में लगायें
जिस तरह से तू चला आया अलग उससे चलायें
छन्द को लेकर शपथ, निर्माण के नवगीत गाकर
मैं बनाने जा रहा हूँ आज तुझको एक गागर ।

•

भारत भूषण अग्रवाल

हम नहीं हैं द्वीप

हम नहीं हैं द्वीप जीवन की नदी के
वरन् जीवन से भरे निर्मल सरोवर !
भले मिट्टी से हुआ निर्माण
किन्तु मिट्टी है परिधि ही
नहीं है मिट्टी हमारे प्राण !
सूर्य की दीपित किरण से
नीर के भावुक मिलन की हम विमल सन्तान !

ठीक है, हम आज चारों ओर सीमा से घिरे हैं
किन्तु हममें जी रही गति की असीमित धार
हममें जी रहा है
सिन्धु की गहराइयों का
मेघ की ऊँचाइयों का प्यार !
हम प्रखर आलोक, गतिमय भविना के पुत्र
हम नहीं हैं रेत के रूखे, अशुभ अम्बार !

हम सरोवर हैं
नहीं हैं धार !
रुद्ध, सीमित, स्थिर बना जीवन हमारा
हर किनारा बन गया व्यवधान !
अब नहीं हममें तरंगित गान

और बंधन की व्यथा में खो गया अभिमान ।
विवश अब हम बह नहीं सकते,
और अपनी ठौर अपने आप ही में बंद
अपनी बात आपस में किसी से कह नहीं सकते ।

आज भी यद्यपि हमारा है अमित उपयोग :
हम अतिथि की प्यास के उपचार;
निकटवर्ती वनस्पति के मीत संवेदन-भरे,
नगर की लघु ज़िन्दगी के मेघ
गाँव की भोली, सलोनी कामिनी के वरदान कलश के
मंद बुझती साँझ में सोपान पर आसीन कवि के
आर्द्र मिलनाह्वान !
पर हमें बेचैन करता यह व्यथा का भाव :
कट चुके हम धार से,
गति से हमारा हो चुका अलगाव !

हम सरोवर हैं
नहीं हैं धार ।
यह नहीं है शाप अथवा नियति अपनी
किन्तु यह तो बस समय की बात
क्षण भंगुर परिस्थिति !
हम पदी के पुत्र हैं, पाषाण-कारा से घिरे
दूर उसके क्रोड़ से, हम दूर उस स्रोतस्विनी से,
तदपि उसके अंश, हम वंशज उसी के !
हो गये हों हम भले मृयमाण
पर
समयवाय के अभियान में मिल
एक होने के लिए आकुल हमारे प्राण !

तुम अगर हो द्वीप
रूखी रेत के बेडोल टीले !
धार की हो गोद में बैठे विषय व्यवधान,
तो भले ही तुम रहो ऊँचे, महान
पर कृपा कर यह न सोचो :
धार की हर लहर जो आती तुम्हारे पास
ठोकती है वह तुम्हारी पीठ
या तुम्हारी कीर्ति में वह छेड़ती है तान !
वह तो विकल बेचैन तुमको लांघ जाने के लिए
सहज गति अनिरुद्ध पाने के लिए
धारा बढ़ाने के लिए ।

और हम यद्यपि नहीं हैं धार
यद्यपि हैं सरोवर मात्र
किन्तु यह केवल समय की बात !
लौटकर टुक ग्रीष्म आने दो
किरण का हमको तनिक वरदान पाने दो,
उफन जाने दो !
हम अहं को भूल
मिटाकर अपनी बनावट,
तोड़ सीमाएँ सभी
एक दिन फिर से मिलेंगे धार में
समवेत जीवन के अपरिमित ज्वार में !

मूर्ति तो हटी, परन्तु···

तम में भटकती हुई अनगिनत आँखों को
जिसने नयी दृष्टि दी

खोल दिये सम्मुख नये क्षितिज
नूतन आलोक से मंडित की सारी भूमि
जनमन के मुक्ति-दूत
उस देवता के प्रति
श्रद्धा से प्रेरित हो
समवेत जन ने
प्रतिमा प्रतिष्ठित की अपने सम्मुख विराट् !
अपने हृदयों में बसी उर्ध्वबाहु कल्पना
पत्थर पर आँकी अति यत्न से !
मूर्ति वह अद्वितीय महाकाय
शीश पर जिसके हाथ धरते थे मेघराज
चरणों में जिसके जन झुकते थे भक्ति से
अंजलि के फूल भार के समान
अधरों पर जिसके थी मंत्रमयी मुस्कान
उल्लसित करती थी लोकप्राण !

यों ही दिन बीत चले
और वह मूर्ति
दिन पर दिन स्वयमेव
मानो और बड़ी, और बड़ी होती गयी !
जड़ प्रतिमा में बंद यह रहस्य, यह जादू
कितने समझ सके, कितने न समझे—यह कहना कठिन है
क्योंकि उसे पूजा सब जन ने
भूलकर एक छोटा सत्य यह :
पत्थर न घटता है, न बढ़ता है रंचमात्र,
मूर्ति बड़ी होती जा रही थी, क्योंकि
वे स्वयं छोटे होते जाते थे;
भूलकर एक बड़ा सत्य यह :

मूर्ति की विराट्ता ने ढँक लिये वे क्षितिज
देवता ने एक-एक करके जो खोले थे !

आखिर में एक दिन ऐसा भी आ पहुँचा
मूर्ति जब बन चुकी थी आसमान
और जन बन चुके थे चूहों से, मेंढक-से,
छोटे, ओछे नगण्य !
क्षितिजों के सूर्य की जगह थी वह मुस्कान
जिसमें नहीं था कोई अपना आलोक-स्रोत !
होकर वे तम में बंद
फिर छटपटाने लगे ।
तभी कुछ साहसी जनों ने बढ़
अपनी लघुता का ज्ञान दिया हर व्यक्ति को
और फिर
शून्य बन जाने के भय से अनुप्राणित हो
समवेत जन ने
अपने ही हाथों से गढ़ी हुई देवता की मूर्ति वह
तोड़ डाली—
छैनी से, टाँकी से, हँसिया से, हथौड़ी से
जिसको जो मिला उसी शस्त्र से ।
गढ़ते समय भी ऐसा उत्साह कब था ?

देखा तब सबने आश्चर्य से :
प्रतिमा की ओट में जो रमी रहीं एक युग
उनकी वे दृष्टियाँ अब असमर्थ थीं
कि सह सकें सहज प्रकाश आसमान का ।
और फिर सबने यह सोचा असमंजस से :
मूर्ति तो हटी, परन्तु सामने डटा था प्रश्न चिह्न यह :

मूंद लें वे आँखें याकि प्रतिमा गढ़े नयी ?
हर अंधी श्रद्धा की परिणति है यह खंडन !
हर खंडित मूर्ति का प्रसाद है यह प्रश्न चिह्न !

•

गिरिजाकुमार माथुर

तैंतीसवीं वर्ष गाँठ

उम्र की इस सौखनी मीनार पर
मंज़िलें मैंने तिहाई पार कीं
जिन्दगी को खींचकर लाते हुए
राह की सौगात सारी वार दी
और भी ऊँची चढ़ाई सामने
और भी भारी लड़ाई सामने
यह भयानक खोखली मीनार है
शक्ति देता सिर्फ़ तेरा प्यार है

साँस लेने मैं रुकूँ तुम प्यार दो
मत, नयन, तन अधर की रसधार दो
शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड़ सकूँ मैं जुल्म के संसार से
बाँह गोरी मनुजता की ध्वज बने
छाप तेरे अधर की सूरज बने
फिर उमड़ते प्यार की दृढ़ ढाल दो
फिर नयन मेरे पयन में डाल दो

लाल आँचल से पसीना पोंछ दो
बाल पतली उँगलियों में ओंछ दो
उम्र की सारी थकान उतार दो
देह पर हथियार नये सँवार दो

क्योंकि जीवन पर खिंची तलवार है
दैन्य, दुख, अन्याय अत्याचार है
आदमी पर आदमी का वार है
विश्व नैतिकता पतन के द्वार है

आज दुनियाँ के करोड़ों आदमी
सह रहे हैं धूप, सर्दी औ नमी
जिंदगी का एक भी साधन नहीं
उम्र तपती धूप है, सावन नहीं
जन्मदिन की क्या खुशी होगी उन्हें
जिंदगी है मृत्यु से भारी जिन्हें
भूख, बीमारी, गरीबी, गन्दगी
कौड़ियों के मोल बिकती जिंदगी

आदमी का मिट गया सम्मान है
मनुजता का अब न गरिमा गान है
यह नहीं इंसान की है सभ्यता
स्वार्थ, लालच, युद्ध जिसके देवता
मूलधन हिंसा, गुलामी सूद है
आदमी बन्दूक की बारूद है

जब जगत को चाहिये फुलवारियाँ
हो रही तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा-सीता सताई जा रही
फिर असुर संस्कृति जमाई जा रही
मिट रही रंगीन जीवन की छटा
छा रही हिंसक मशीनी घन-घटा
आज जीवन को चुनौती मौत की
नीति क़ैदी है कुटिल कलधौत की

है ग़नीमत हम न सड़कों पर गिरे
भूख रोगों से नहीं अब तक मरे

है यही क्या कम कि औसत उम्र से
ज़िंदगी के दस बरस ज्यादा हुए
विश्व में जब कुटिलता है, त्रास है
सत्य शिव का तब हमें विश्वास है
और है विश्वास जन-कल्याण का
रंग-रस का, याग का, बलिदान का
फिर कंटीली दृष्टि रंजित प्यार दो
आदमी की शक्ति का आधार दो
प्यार तुमसे हो जगत से प्यार हो
प्रेरणा यह रंग-मय संसार हो
शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड़ सकूं मैं मौत की ललकार से।

हब्श देश

मैं अफ्रीका
मुझ पर दुख के यम की घिरी सांवली छाया
युगों पुरानी गहरी छाया
इतनी गहरी
जैसी श्याम कोयले की हैं खानें मेरी
सांसें भरता मेरा जीवन
नमी भाप सी फैलाता है
जहाँ दैत्य कांगो नद भीषण
गरम सिमूम उगलता
रज-तापित हरमैटन
कालाहारी पत्थर-मरु, हम्मदा पुराना

बरफ-ढँके किलिमंजारों का अग्नि दहाना
भूभूल सा वह पांडु सहारा
दुर्दम भीम जंगलों का अभिशप्त दुधारा

जिस दिन इस बर्बरी धरती पर
प्रथम मानवी अरुण खिला था
पलक खोलता समय युवा था
तब काली नदियों के तट पर
बीहड़ मैदानों के ऊपर
आदिम नगर उठे थे मेरे
लक्ज़ोर, मैमनान औ' मेम्फ़िस
कारथेज, सायरीन औ' थेबेस
गाता था मैं आइसिस के मंदिर-यक्षों में
तारों भरे ओसाइसिस के रंगीन पथों में

मैं अफ्रीका
मौन पिरामिड
मैं रहस्यगर्भा स्फिक्स हूँ
विश्वसृष्टि की जटिल पहेली
युग युग से मैं
देता आया प्रकृति काल को नित्य चुनौती
व्योम-फाड़ दानव-चिकार मैं डिनोसार की
अंधड़ की सर्राहट हूँ मैं
इक्थ्योसारस पक्षिराज की
मैं दहाड़ विकराल बबर की
चीख रिनो की
डिक्-डिक् की सरपट
चिंघाड़ें जलघोड़ों की

उमस ज़िंदगी की है मेरी
मकड़-जाल से भभक भरे वर्षावन जैसी
कीच-घरौंदों में सोता मैं
दैत्य-छिपकली भरे वनों में
गोजर मक्खों के विजनों में
नदशूकर औ घड़ियालों में

नागफनी उत्तुंग कंटकित
साँप नहीं है, नहीं साँप है
आदमखोर लता-काँटों में
महाशक्ति का विकल शाप है
साँपों की बेला से उलझा
मैं मानव फंगस का जंगल
टीकेदार कोबरा फन पर
गोंद चू रही मेरी प्रतिपल
गाढ़ी गोंद कि रस धरती का
जिसमें सरक रहे हैं अजगर
गोरे लाल-तगीले अजगर
झर्झर महानील से लेकर
चितकबरे दक्षिण सागर तक
हेमगर्भ मिट्टी के सत को
निगल रहे कुंभोदर अजगर
हीरक, मणि-मुक्ता, हिरण्य
मैं कमल-कोष रस, धातु, द्रव्य का
ऊष्म कमर-बंधन पृथ्वी का
श्यामल मणि नितम्बिनी भू का
मैं अफ्रीका
इन्सानी जीवन-यात्रा की

मैं बनमानस पहली मंजिल
खींच सृष्टि-रथ बाहर लाया
छोड़ गुरीलों वाला जंगल
टूटी थी इतिहास कड़ी जो
शुरू हुई फिर मुझ पर आकर
वह विकास मणि लोप हो गयी
मुझमें जीवन विकसित पाकर

बीत गये जब
तारकोल से गाढ़े आदिम अंधकारमय
वर्ष करोड़ों अग्नि-वाष्प के
मूसलधार गरम मेघों के परदे टूटे
नीली धातु भरी गाजों की
तड़क-लकीरें खत्म हो गयीं
अब हज़ार मीलों के खोखल फटे
बन गये स्याह समुन्दर
मेरी धरती उभरी थी तब
घोर जीव, वन लिये पीठ पर
फिर विराट् भूमंथन आये
अट्टहास कर जुड़ी सतह शतखंड हो गयी
मिट्टी की जड़ फटी निसर्ग कराल रोर से
एक समूची सहस कोस की स्लेट
फूट कर झन्न हो गयी
भीम लोथड़े धरती के
टूटे, छिटके, द्वीपों में बिखरे
महापिंड वह आदि गोंडवाना-प्रदेश का
भ्रूण-विधाता वही पिता था
औरस वीर्यपुत्र हूँ उसका

मैं अफ्रीका

देखो मेरी स्याह बनैली भूमि उर्वरा
जिस पर पिता नील बहता है
उगल रही हैं खानें सोना
अभ्रक ताँबा जस्ता क्रोमियम
टीन कोयला लोह प्लेटिनम
युरेनियम, अनमोल रसायन
केपोक, सिल्क-कपास, अन्नधन
द्रव्य फ़ासफ़ेटों से पूरित
मेरा वह नगराज एटलस
नदी-रेत में रिस-रिस फैली
मेरे सोने-चाँदी की रज
वन-तरुओं से चूता अमरित
किन्तु जमे सोड़े की झीलों सा
अब मेरा पीड़ित है अन्तर
एक ओर है मेरी सम्पत्ति
एक ओर यह कीचड़ के घर
एक ओर हब्शी गुलाम मैं
एक ओर कुंभोदर अजगर
मेरी भूमि कुबेर सरीखी
मैं हूँ अब तक स्याह जानवर
छोड़ गये खंडहर ही मुझ पर
कितने हनीबाल औ सीज़र
रक्त-पत्थरों के पग धर कर
छाती पर इतिहास चला है
फीनीशियन, ग्रीक, रोमन
वेंडाल, अरब का दीप बुझा है

पर इतिहासों की मशाल से
ज़िन्दा जल कर भी न मरा हूँ
तूतन खार्मन, क्लियोपेट्रा के चिह्न मिट गये
मैं ज़िन्दा हूँ

महायातना की चट्टानों से
मैं जकड़ा हुआ प्रमीथस
गरम हृदय का मांस नोच कर
मनुज-बाज़ खा रहे निरन्तर
नंगी स्याह पीठ पर उछले
सदियों के निर्मम कोड़े हैं
शोषक-दैत्य-मशीनों ने
पंजों के गड़े चिह्न छोड़े हैं
पहले पहल अग्नि जीवन की
मैं ही पृथ्वी पर था लाया
इस मिट्टी के द्रव्य, धातु, रस
मनुज, जीव, वन, नद, मरु, पर्वत में दीपित है
उसी अग्नि की व्यापक काया
वही अग्नि खेतों से उठ कर
मुक्ति-उषा बन कर आयेगी
वर्णयंत्रणा वाली लोहे की दीवार पिघल जायेगी

नयी उषा आ रही
शोकमय एक समूची आदि कौम पर
नयी उषा आ रही
सैकड़ों साल बाद इन पिरामिडों पर
शुतुरमुर्ग के श्वेत परों सी
मुक्ति-धूप साँवर गाँवों पर

जम्बेज़ी, नाइजर, कांगेरा,
कांगोनद, बहर-एल-जेबेल पर
महाजाति की मनुज चेतना
कीच-घरौंदों से अब उगती
अमिन्हतेप की भीष्म मूर्ति सी
भोर-धुंध में सोकर उठती

अपनी अपलक काल-दृष्टि से
मौ स्फ़िंक्स देखती लीला
ममी उठ रही हैं अजगर की
दफ़न हुआ यम-युग ज़हरीला
महाजाति की सुबह हो रही
चमक इतिहासों का शीशा
मौन समय-स्फ़िंक्स करती
निश्चित सूरज की अग्नि प्रतीक्षा

धर्मवीर भारती

निराला के प्रति

वह है कारे कजरारे मेघों का स्वामी
ऐसा हुआ कि
युग की काली चट्टानों पर
पाँव जमा कर
वक्ष तान कर
शीश घुमा कर
उसने देखा
नीचे धरती का ज़र्रा ज़र्रा प्यासा है,
कई पीढ़ियाँ
बूँद-बूँद को तरस-तरस दम तोड़ चुकी हैं,
जिनकी एक एक हड्डी के पीछे
सौ सौ काले अन्धड़
भूखे कुत्तों से आपस में गुथे जा रहे।
प्यासे मर जाने वालों की
लाशों की ढेरी के नीचे
कितने अनजाने
अनदेखे
सपने
जो न गीत बन पाये
घुट-घुट कर मिटते जाते हैं।
कोई अनजनमी दुनियाँ है

जो इन लाशों की ढेरी को
उलट - पुलट कर
उभर उभर उभर आने को मचल रही है !

वह था कारे कजरारे मेघों का स्वामी
उसके माथे से कानों तक
प्रतिभा के मतवाले बादल लहराते थे
मेघों की वीणा का गायक
धीर गंभीर स्वरों में बोला—
'झूमझूम मृदु गरज गरज घनघोर
राग अमर अम्बर में भर निज रोर।'
और उसी के होठों से
उड़ चलीं गीत की श्याम घटायें
पाँखें खोले
जैसे श्यामल हंसों की पाँतें लहरायें !
कई युगों के बाद आज फिर
कवि ने मेघों को अपना संदेश दिया था
लेकिन किसी यक्ष विरही का
यह करुणा-संदेश नहीं था
युग बदला था
और आज नव मेघदूत को
युग-परिवर्तक कवि ने
विप्लव का गुरुतर आदेश दिया था !
बोला वह···
हर जलधारा कल्याणी गंगा बन जाये
अमृत बन कर प्यासी धरती को जीवन दे
औ' लाशों का ढेर बहा कर
उस अनजनमी दुनियाँ को ऊपर ले आये

जो अन्दर ही अन्दर
गहरे अँधियारे से जूझ रही है।
और उड़ चले वे विप्लव के विषधर बादल
जिनके प्राणों में थी छिपी हुई
अमृत की गंगा।

बीत गये दिन वर्ष मास···
बहुत दिनों पर
एक बार फिर
सहसा उस मेघों के स्वामी ने यह देखा···
वे विप्लव के काले बादल
एक एक कर बिन बरसे ही
लौट रहे हैं
जैसे थक कर
सांध्य विहग घर वापस आयें।
चट्टानों पर पाँव जमा कर
वक्ष तान कर उसने पूछा···
'झूम झूम कर
गरज गरज कर
बरस चुके तुम ?'
अपराधी मेघों ने नीचे नयन कर लिये
और काँप कर वे यह बोले···
'विप्लव की प्रलयंकर धारा
कालकूट विष
सहन कर सके जो
धरती पर ऐसा मिला न कोई माथा !
विप्लव के प्राणों में छिपी हुई
अमृत की गंगा को

धारण कर लेने वाली
मिली न कोई ऐसी प्रतिभा
इसीलिये हम नभ के कोने कोने में
अब तक मँडराये
लेकिन बेबस
फिर बिन बरसे वापस आये।
ओ हम कारे कजरारे मेघों के स्वामी
तुम्हीं बता दो
कौन बने इस युग का शंकर
जो कि गरल हँस कर पी जाये
और जटाएँ खोल
अमृत की गंगा को भी धारण कर ले !'
उठा निराला, उन काले मेघों का स्वामी
बोला···'कोई बात नहीं है
बड़े बड़ों ने हार दिया है कन्धा यदि तो
मेरे ही इन कन्धों पर अब
उतरेगी इस युग की गंगा
मेरी ही प्रतिभा को हँस कर कालकूट भी पीना होगा।'
और नये युग का शिव बन कर
उसने अपना सीना तान जटाएँ खोलीं।
एक एक कर वे काले ज़हरीले बादल
उतर गये उसके माथे पर
और नयन में छलक उठी अमृत की गंगा।
और इस तरह पूर्ण हुआ यह नये ढंग का गंगावतरण।

और आज वह कजरारे मेघों का स्वामी
ज़हर संभाले, अमृत छिपाये
इस व्याकुल प्यासी धरती पर

पागल जैसा डोल रहा है,
आने वाले स्वर्णयुगों को
अमृतकणों से सींचेगा वह
हर विद्रोही कदम
नयी दुनियाँ की पगडण्डी लिख देगा,
हर अलबेला गीत
मुखर स्वर बन जायेगा
उस भविष्य का
जो कि अँधेरे की पर्तों में अभी मूक है।
लेकिन युग ने उसको अभी नहीं समझा है
वह अवधूतों जैसा फिरता पागल-नंगा
प्राणों में तूफान, पलक में अमृत-गंगा।
प्रतिभा में सुकुमार सजल घनश्याम घटाएँ
जिनके मेघों का गंभीर अर्थमय गर्जन
है कभी फूट पड़ता अस्फूट वाणी में
जिसको समझ नहीं पाते हम
तो कह देते हैं
यह है केवल पागलपन
कहते हैं चैतन्य महाप्रभु में, सरमद में
ईसा में भी
कुछ ऐसा ही पागलपन था
उलट दिया था जिसने अपने युग का तख्ता।

अनुशासन पर्व

१

तरेरी हुई भौंहें, तने हुए सीने, कसी हुई मुट्ठियाँ
कहाँ गयीं ?
भीख माँगने वाले हाथ, झुकी हुई आँखें
खुशामदी अदा, कटी हुई पाँखें—
अदृश्य हथकड़ियों को कंगन की तरह खनकाते हुए
बेड़ियों को पैंजानी की तरह छनकाते हुए—
ये कौन ठुमक-ठुमक कर नाच रहे हैं
ये कौन सिले हुए होठों से अविराम अभिनन्दन बाँच रहे हैं ?
ये कैसा अजीब लोहार है मेरे मालिक !
इसमें मैं कहाँ हूँ ?

तो क्या शब्दकोश से गिरा दिया गया
एक गैर ज़रूरी शब्द स्व तं त्र ता
एक तकलीफ देह शब्द जो खाहमखाह याद दिलाता था--
नीला फैला आकाश, खुली खिड़की, आजाद तैरते बादल
पाखी की चहक, झूमती डाली, पहाड़ो नदी
उन्मुक्त चंचल बच्चे
घर लौटते निश्चित बतियाते लोग

अब सहमे हुए लोग बतियाते नहीं
बाँध दी गयी हैं झूमती शाखें
कसी हुई मुट्ठियाँ, तरेरी हुई आँखें
रातों रात बदल गयी अपने आप !
हवाओं में सिसकता हुआ रुँधे गलों का भयभीत जयजयकार
परवरदिगार !

पर अपनी इस आलानाम की चीज़ का मैं क्या करूँ
क्या करूँ इस एक एक शब्द का
जिस पर अमिट है तुम्हारे हाथों की हल्दी छाप !

२

आला रे, आला रे, आला !
रद्दी कागज़, शीशी बोतल वाला
आपके घर में जो भी बेकार का सामान हो
सपने हों, सचाई हो, आत्मा हो, ईमान हो
मत शरमाइये
बेहिचक ले आइये
हम उसे तोल कर वाजिब मोल देंगे
आपके लिये समृद्धि का द्वार खोल देंगे
ओ हो ! आप समझते हैं कि आप बहुत बड़े हैं
ईमान में, बुद्धि में, रंग में, रूप में
जनाब वहाँ मार्केट की सीढ़ियों पर धूप में
बड़े से बड़े बिकाऊ लोग खड़े हैं
गिरती हुई क़ीमतों की पर्चियाँ लगाए
क्रांति की डलिया में समर्पण सजाए
चले आ रहे हैं एक से एक समझदार
सरे बाज़ार—
परवरदिगार !
पर इस आत्मा नाम की चीज़ का क्या करूँ ?
क्या इसे थाल में रखकर पेश करता रहूँ
बेक़सूर मार खाए बच्चे की तरह आखिर कब तक डरता रहूँ !

३

जिसे पुरखों के अपराजेय ईमान की तरह पाया है
जिसे उगते सूरज के जयगान की तरह गाया है
हर हारती सचाई को बचाने के लिये जो ढाल की तरह उठी है
बड़े से बड़े झूठ के खिलाफ जो महाकाल की तरह उठी है
क्या वह ज्वार के साथ रेत के पदचिह्न की तरह बह जायगी ?
क्या सिर्फ झूठ, सिर्फ झूठ, सिर्फ झूठ की आवाज़ बाक़ी रह जायगी ?
तो,
परवरदिगार
यह तुम्हारा बुज़दिली का लोहार
मुबारक़ हो तुम्हें, मुझे अपने एकांत में लौट जाने दो
और जो झुके नहीं टूट गये, उनकी
पराजय का विजयगान मन ही मन गुनगुनाने दो !

नरेश मेहता

अनुनय

यहाँ वहाँ लोग ही लोग हैं
मैं कहाँ हूँ ?
तुम्हारे पैरों के नीचे
मेरा नाम कहीं दब गया है
उठा लेने दो
मेरे लिए वह मूल्य है।

मैं नहीं कहता कि
लोगों की देहों से दुर्गन्ध आती है
पर—सुगंध भी नहीं कह सकता,
ये दोनों ही आग्रह है
इसीलिए मिथ्या हैं,
जबकि
हर परिश्रम की गंध होती है
वही लोगों में होती है
मैं ऐसी गंध को भी मूल्य कहता हूँ।
लेकिन यह भी नहीं कि
लोग गंदे नहीं होते
व्यक्तियों की तरह !

जिस किसी को नाम दोगे
स्वत्व अनुभव होगा
लेकिन
लोग होने का अर्थ
नामों को कुचलना नहीं होता ।

आओ
हम सब अपने अपने नाम खोज निकालें
भीड़ों की असावधानियों से जो
कुचल गये हैं
क्योंकि वे मूल्य हैं
अपने को जानने के लिए—कि
हम कब लोग होते हैं
और कब नहीं होते ।

समय-देवता

सोने की वह मेघ चील
अपने चमकीले पंखों में ले अन्धकार अब बैठ गयी है दिन-अंडे पर ।
नदी-वधू की नथ का मोती चील ले गयी ।
गगन-बीड़ से सूरज-ग्वाला हाँक रहा है दिन की गायें ।
नभ का नीलापन चुप है दिशि के कंधों पर सिर धर ।
इस उतराई-मार्ग दिवस के सैन्धव नत शिर होकर उतरे
सधे चरण से
चमक रही पीले बालों वाली अयाल उनकी गर्दन की ।
साँझ-दिवस की पत्नी-अपने नील-महल में बैठी कात रही है बादल

दिशि की चारों कन्याएँ हैं माँग रहीं तारों की गुड़ियाँ ।
अभी बादलों के परवत पर खेल रही थी दिन की लड़की स्वर्ण किरण वह
नहीं पास में पिता देख चौंकी थी, मेले में खोये बालक सी
दूर आल्प्स के पार, किरन-गायों की घंटी सुन कर दौड़ रही है
तिब्बत की ठंडी छते लांघ वह ।
पूरब दिशि में हड्डी के रंग वाला बादल
लेटा है पेड़ों के ऊपर गगन-खेत में
दिन का श्वेत अश्व मार्ग के श्रम से थक कर मरा पड़ा ज्यों ।

समय देवता !
हटा ले गये तुम अपनी आलोक-भुजा बरसा कर दिन का पानी
और तुम्हारी ग्रहण-भुजा की श्याम अँगुलियाँ
पृथ्वी की सारस-ग्रीवा पर फौलादी बन बैठ गयी है ।
यूनानी मुनि प्लेटो की मुद्रा में बैठे समय-सनातन !
घूम रही मेरी धरती में आँख गड़ाये देख रहे क्या ?
बिछा हुआ है देव तुम्हारी प्रलय-सृजन की आँखों का आकाश हमारे
देशान्तर औ अक्षांशों के इन लम्बे बाँसों पर ।
सविता, वरुण जहाँ छह-छह माहों तक अतिथि बने बैठे रहते हैं
उस प्रदेश का मैं एस्कीमो
मेरी बाहों में बर्फ़ भरी
मैं सदा खींचता आया यह हड्डी की गाड़ी असुर बर्फ़ के सीने पर ।
मुझको मेरा टुण्ड्रा प्रिय है ।
इन बर्फ़-जंगलों में कोई भी पेड़ नहीं
जिसकी छाया छूने से ठंडा मन होवे तिमिरमान ।
दूर आर्कटिक के खेतों में
मछली की खेती होती है ।
मेरी पत्नी बैठी होगी बर्फ़-गुफ़ा में आग जलाये
श्वेत रीछ की आशा में ही माँस-गंध साकर हो गयी होगी ।

मुझको उसकी आँखें प्रिय हैं।
जीवन की बर्फ़ीली निर्जनता में जैसे उग आये हँसमुख हरियाली।
छह महीने तक जम जाता है देव, हमारे गगन-खेत में जल किरनों का
जाने किन स्लेजों पर चढ़कर अन्धकार आता ही रहता।
लगता जैसे
सूर्या को ही ब्याह दिया दिन ने अपने प्रिय मित्र वरुण से।
विदा हो गयी कन्या।
रिक्त हो गये सब दिग्पालों के अन्न-भाण्ड वे।
सुनसान पड़ा है नभ का मंडप
जिसमें लग्न-यज्ञ का धूम घिर रहा गाढ़ा होकर।

समय देवता!
उस नीचे के गर्म देश में उतर चलो अब
कहीं न जम जाये संवत्-रथ, वर्ष-अश्व औ' नील रेशमी क्षण की वल्गा।
यह नीले सूरज की धरती नील-कमल सी शुभदा होवे
रितु के बर्फ़-फूल चमेली से मंगल हों।
होते हैं प्रारंभ यहाँ से मनुज-पदों के रक्त-चिह्न
जो किसी सदी में कभी चले थे अग्नि-भूख की प्यास मिटाने
समय देवता! मनुज निष्क्रमण की है यह प्राचीन-कथा।
किन्तु सामने आ पहुँची है कर्म-भूमि अब यह वोल्गा की
यह यौवन की भूमि सोवियत
जहाँ मनुज की, उसके श्रम की होती पूजा
पूँजी औ' साम्राज्यवाद की तोड़ बेड़ियाँ
हाथों में नव जीवन की उल्काएँ लेकर मनुज खड़ा है कुतुब सरीखा।
उसके चलने में लोहा है।
कौन रोक सकता है मानव को चलने से
जिसके संग संग ही आदि काल से इन्द्र चल रहा
मनुज चल सके इसीलिए तो अन्धकार में सूर्य चल रहा।

जहाँ गया मनु-पुत्र नदी ने जल पहुँचाया
रत्नभरा धरिणी ने सौ-सौ हीरों से लादा।
सबसे पहले इसी भूमि श्रम की जय-जय कार हुई है
एक पुरुष लेनिन की वाणी
शतकंठी हुङ्कार हुई है।
धीमे बोलो समय-देवता! उसी पुरुष की यह समाधि है
अभी अभी जो कर्म-निरत था
अब आँखें आकाश मींच कर श्रम के सपने देख रही हैं।
सदा मेघ आशीष लिये आये बिजली के रथ पर
रितुओं के रंगों के चामर स्वर्ग रचे इस भू पर।

वह जो पीली भूमि दिख रही, देव! वही है पीत सूर्य की पीली वसुधा
जिसका होता कहवा मीठा।
श्रमण चीन का पीला चोवर अल्ताई पर बिछा हुआ है।
वे अफ़ीम के खेत उदुम्बर रंगों में डूबे सोये हैं।
मोरपंख सी सजी रमणियाँ
तितली से रंगीन, शरद्-मेघों से हल्के उनके पंखे
यात्रा का श्रम-ताप हरेंगे।
सीक्यांग नदी मीठे जल से है भरी हुई
ये चौड़-पेड़ की नौकाएँ सन्ध्या-विहार में अभी देव को डुबा सकेंगी।
किन्तु आज तो चीन देश की वसुधा माता झुलसी हुई मृतप्राय है।
वे विदेश-पूँजी की कीलें जो छाती में ठुकी हुई थीं
तीस साल के बाद आज वे उखड़ रही हैं।
मेरी चीनी माता की आँखों में कोई भाव नहीं है।
राग-प्रेम कुछ नहीं बचा है
केवल नयन-गगन में भूख-प्यास की चीलें मँडराती हैं।
समय देवता! बम के गोलों से यह धरती बाँझ हुई है
चीन देश के नगर-ग्राम घाटी-जंगल में

भरा हुआ धूंआ ही धूंआ
गोबी की मंगोल रेत पर युद्ध-लाश दुर्गंध दे रही ।
पेकिंग की चिकनी सड़कों पर पिछला जीवन मरा पड़ा है
नवजीवन के हाथों में गुस्से की मुट्ठी बँधी हुई है
पेशानी पर किसी आक्रमण की चिन्ता है
दौड़-दौड़ कर चरण देश के द्वार बन्द करने में रत हैं
आज वर्दियाँ तीस वर्ष के बाद उतरती
लगातार बारूद उगलते बन्दूकें भी हाँफ रही हैं ।
पिछली सारी फ़सलों के वे महल जल गये
उन फ़सलों के हरे गलों में टँगे हुए तावीज-गुलामी झूल रहे हैं ।
जाओ कालिदास के बादल, चीनी धरती बुला रही है
जाओ हे सतरंगी सूरज चीन देश में भोर हुई है ।

दक्षिण दिशि में देव ! देखते हैं वह धरती की सिकुड़न सी लम्बी रेखा
राजनीति की फ़सल सरीखी खड़ी हुई दीवाल चीन की
रुक जायें इतिहासों की जिससे सेनायें ।
मनुज बाँटना चाहा ऊँचे बुर्ज बनाकर मिची आँख के सम्राटों ने ।
चीन देश की वसुधा अपने स्तन से दूध पिलाती जिसको,
ज्वालामुखि मस्तक है जिसका
दूर छिपकली सा वह छोटा टापू है जापान देश का
जो कि मर चुका एटम बम से ।
डूब गयी बूटों की टापें, सिसक रहा कोढ़ी सा जीवन
विज्ञान धुएँ के अजगर सा है लील रहा सब रंग रेशमी मनु-श्रद्धा का ।
हिरोशिमा में मनुज मर गया ।
वही मनुज जिसके सिर पर यह गगन मुकुट है
अन्धकार सूरज-मशाल ले किरनों का केसर देने को साथ चल रहा
और जिसे वह दिन की चिड़िया
गगन-आम पर दिनभर बैठी धूप सुनाती

वह सृष्टि-श्री मनुज आज विज्ञान-कब्र में मरा पड़ा है ।
दौड़ रही हैं गन्धक और फासफोरस की पीली लपटें
जिनमें उस जापान देश का सदियों का संगीत जल गया ।
झुलसी हुई पलक नारी की, मेघ-भरी वे भावहीन जापानी आँखें
शिशु के हाथों में हड्डी की गुड़िया
दूर पैसिफ़िक-हरीझील में देव ! हँस रहे वे धरती के द्वीप कमल हैं ।

समय देवता ! यह तिब्बत है
यहाँ मनुज लामा होता है
चावल और धान, धरती की यह बर्फ़ीली छत है सोयी ।
किन्तु आज नव क्रान्ति बन्द इसके दरवाजों पर आवाज़ लगाती ।
यह सम्मुख धरती का पति हिमिगिरि आ पहुँचा ।
सबसे पहले किरन इसी से लग्न रचाती ।
अपनी गायें छोड़ धरा पर सूरज इससे गोधूली तक बातें करता ।
याक बैल पर बर्फ़ ओढ़कर हिमगिरि को अच्छा लगता है
ब्रह्म देश तक चलते जाना ।
दोपहरी में मानसरोवर झील किनारे हंसों को नहलाते इसको देख सकोगे ।
दूर द्रोणियाँ मुनि-पत्नी सी देवदार के केश सुनहले सुखा रही हैं ।
यह केसर सूरज की धरती भरत-भूमि
इस स्वर्ण-धूप में मन्त्रपाठ सी करती लगती
वे सन्थाली गीत असम के जंगल गाते
बंगदेश की वंशी को वह अंडमान सुनता आया है ।
गोदावरी का गीत उठ रहा
ओर त्रिवेन्द्रम के कूलों पर खिल खिल पड़ती है धीवर की वंशी ।
विन्ध्या के घर बादल आये, रेवा गाती सोहर
राजपूतनी ऊँटों को घुँघरू पहना कर
रेत-वनों में हरी दूब सी चमकी पड़ती ।
अमराई में बौर आ गये, लाज आ गई

मेरे उस जलते बिहार को ताड़ों ने हँस छाया दे दी ।
उज्जयिनी को खोजा करते मेघदूत सन्देश-कलश ले ।
समय देवता !
वही अजन्ता जिसकी पत्थर की पलकों में अभी तलक भी
एक आँख में भोग, एक में मुक्तियोग के सपने हँसते ।
यह इमली का देश, यहाँ कावेरी को लहर चूड़ियाँ सिन्धु पिन्हाता ।
किन्तु आज तो शस्य श्यामला इस धरती की ।
फसल जल रही, मनुज मर रहा ।
कलकत्ते के फुटपाथों पर मनुज खून में लथपथ डूबा
अपनी सारी संस्कृतियों से ऊब ऊब कर
आसमान का गट्ठर बाँधे चला आ रहा
शुतुरमुर्ग की टाँगों जैसा नंगा-नंगा
धर्म-घृणा की ज्वाला में जल-भुन कर
आज मात्र शरणार्थि बन गया ।
लगी हुई है आग आज आसाम-वनों में
सदियों से जो बन्द पड़े हिम के दरवाजे
नयी हवा के भूकम्पों में काँप रहे हैं, टूट रहे हैं ।

पैगोडा से भरी भूमि यह ब्रह्म देश है
सीप सरीखी आँखों वाली ब्रह्म-युवतियाँ
अपने मनु के विश्वासों का दीप संजोये इरावती के साथ-साथ चलती हैं ।
हिन्द चीन औ ब्रह्म देश में धुआँ उठ रहा
सागौन-जंगलों में जीवन की आग लगी ।
नवजीवन के हाथों में विश्वास खंग है
और अँधेरे नीरो का गिर रहा मुकुट है ।

सिन्धुराज यह महा पैसेफ़िक
ध्रुव से ध्रुव तक नील बिछे हैं, गगन मित्र है केवल इनका ।

डमरू जैसा देश दिख रहा अमरीका का
कोलम्बस के पोत लगे ये इसके तट पर, उपनिवेश औ' शोषण के हित ।
गगन-विचुम्बित इन महलों की मनुज नीव है, पैसे का जिनमें निवास है
एटम औ' हाइड्रोजन बम हैं नभगामी महलों के कर में
चाह रहे जो सृष्टि-धरा को केवल हिरोशिमा कर देना ।
इसने सोने की ईंटों से चाहा ऊँचे महल बनाना
किन्तु बन गये आज दैत्य वे, खड़े हुए हुङ्कार भर रहे
जिनकी अन्धकार की लम्बी परछाईं से
अतलान्तिक औ' महा पैसेफ़िक काँप रहे हैं ।
व्यर्थ बह गया मनुज रक्त का अथक परिश्रम
कुहरे में बन्दी हैं किरनें और रात के पर्वत दुर्गम
मनुज-बाँसुरी पर बजती है दानव के लोहे की सरगम ।
धन्य-धान का वसुधा-यौवन लोह-पटरियों की कीलों से बँधा हुआ है ।

अतलान्तिक में पोत बहुत धीमे चलते हैं
इसका जल सोता रहता है
वह देखो उस अन्धकार की कुहर-बाँह में नींद भरा जल साँस ले रहा ।
यह नीले सूरज की धरती मेरा योरप
आसमान का संजय जिसके युद्धों का इतिहास कह रहा ।
यह धरती के मस्तक जैसा शेक्सपियर का देश आ गया
जिसकी भाषा की बाँहों में धरा बँधी है ।
सेक्सन संस्कृति के सदनों पर
रात बहुत ठंडी होकर पिछले प्रहरों में स्वयं नींद से भर जाती जब
उतरा करते क्रिसमस-बच्चे डर कर दुष्ट तिमिर-चाचा से
ये स्काटी मानसून-घाटियाँ हँसतीं धरती के मंगल सी ।
नीचा मुख पर भेड़ें चरतीं
ऊँचा मुख कर देखा करता स्काटी ग्वाला कृपाशील उस नील गगन को
जो उसके घर पर छाया है

पीछे छूट गयीं पर्वत की घनी श्रेणियाँ, सम्मुख पेनाइन पठार हैं
वस्त्र-नगर मैंनचेस्टर की दिख रही चिमनियाँ
जहाँ बन रहे सन्दल रंगों वाले रेशम वस्त्र सजीले,
देश देश की परिधानित होंगी कन्याएँ।
उतर चलो, नीचे बरमिंघम
काला गगन, हवा सांवली, ज़हरीले धूएँ के बादल
भट्टी मोटी लालटेन ले घूम रहे गोदामों में ये मोटे वार्डर
जाँच रहे रेलों के पहिये हथौड़ियों से घन-घन कर के
मोटे होठों में है चुरुट जल रहा।
आसमान की छाती में इंजन का सारा शोर भर रहा।
चमक रही सिग्नल-खंभों पर
लाल-हरी लाइटें राक्षस की आँखों सी।
लोहे के पाताल नगर में मानव जाने कहाँ खो गया।
कुछ हल्के से दीख रहे हैं नीले-ठण्डे पार्लमेन्ट के भवन
कि जिनमें
चमड़े की जिल्दों में बन्दी सदियों का इतिहास खून से लथपथ, घायल
सिसक रहा है।

देव ! फ्रान्स के लिये पोत के लंगर खुलते
कोमल लहरें विनयशील हो हँस-हँस खिल-खिल पोत बढ़ातीं।
अंगूरों का देश आ गया
इस धरती से कण कण तक को ड्यूकों ने मदिरा से सींचा।
किसी फ्रेंच युवती सा पैरिस
चमकीली किरनों का गाउन पहने सबसे पूछ रहा है
कल की बासी छाया मेरे कुन्तल में तो शेष नहीं है ?
दूर कहीं यूक्लिप्टिस के पत्तों की गोरी छायाओं में से छन-छन कर
चली आ रही नार्मेंडी के उस शेटो की नृत्य-गतें वे
सीन नदी की लहर-कमर में हाथ डाल कर जिन पर नाच रहा है पैरिस।

इस विलास में डूबे पैरिस के रेशम-पर्दों के पीछे
उच्च वर्ग का स्वार्थ मन्त्रणा करने में रत।
फ्रान्स सदा युवती का जीवन आज तलक जीता आया है।
एक शराबी के शरीर सा फ्रान्स बचा है
जिसको बस बातों की आदत मात्र रह गयी।
किन्तु अभी नवजीवन में धरती की सौंधी गन्ध आ रही
स्वस्थ नसों में सीन नदी का मीठा जल गुंजाय मान है।
अंगूरों से ज्यादा मीठा वह मिट्टी का फूल
जो कि अब धरती माता उगा रही है।
गगन-गड़रिया अपने कुहरे-फ़ेल्टहैट में जिसे खोंस कर
बैठा हुआ आल्प्स पर्वत पर अपनी भेड़ें चरा रहा है।

स्विटज़र लैंड का स्वर्ग दिख रहा
झीलों के जो नील-कमल के सपनों में ही डूबा रहता।
नारसीसस यह आल्प्स-बर्फ़ की बाँह-घाटियों में झीलों के गीत गा रहा।
हरी झील में पीत किरन-चिड़ियाँ जब पानी पीने आतीं
तब कतार में लगे सनोवर-फूलों की रंगीन घाटियाँ
सान्ध्य गगन के नील-चर्च में उन्हें बुलातीं।
मोरपंख से उन चिड़ियों के हल्के डैने
हेलेन सी डैन्यूब-किनारे, गाउन जैसे बिछ जाते हैं।
नाइटेंगल बैठी पाइन पर
किसी कीट्स की आशा सी ही अपने छोटे रंग-कंठ के माउथ-आरगन
छेड़ रही है।
रंग-घाटियों की वह सरगम
नयी वधू की श्वेत स्कर्ट सी हिम पर बिछने-बिछने को है
और रात की नीली रेशम वाले पर्दे
आल्प्स पर्वतों के महलों पर जब गिर जाते
अन्धकार के नील-वनों में लार्क-कंठ तब डूबा-डूबा उठने लगता।

तम का बैरी तारों की वे मोमबत्तियाँ जला कहीं फिर चल देता है।
केवल पीले बालों वाली सन्ध्या का वह गगन-पियानो
बहुत रात तक बजता रहता।
और मुझे लगने लगती तब
मेरी यह योरप की धरती हरी झील में नील-फूल सी।

यह मानव का ज्वालामुखि जर्मन प्रदेश है
राइन ने कविता दी इसको,
युद्ध बनी डैन्यूब-तलहटी
राइन के जलकंठों में गेटे ने गाया
और हिटलरी फ़ौजी बूटों ने कुचला डैन्यूब-लहर को।
संगीनों से कभी नहीं गेहूँ उगता है।
कलपुर्जों के खेतों में बस बम की फ़सल हुआ करती है।
खाकी वर्दी का युग मेरा
मेरे इस जर्मन-प्रदेश में घर का कोई नाम नहीं है
बनीं हुई बैरक ही बैरक
वसुन्धरा से धरा बना दी गयी आज है फ़ौजी नक्शा।
मनुज नहीं केडेट चलता है।
यह बर्लिन का शहर आज नाज़ी-पागल सा
युद्ध-चुरट पी चुका स्वयं के कपड़ों में ही आग लगा कर।
जली वर्दियाँ धुआँधार फ़ौजी नक्शों में आग लग गयी।
न्यूरेम्बर्ग से गुलेटिनों की आती रही कई आवाज़ें।
अब तो मेरे इस प्रदेश को कहना होगा बूचड़ खाना।
जले खेत हैं, वृद्धा सी हो गयी बालियाँ
जिनमें नहीं एक भी दाना।

अपने सिर पर आल्प्स-मुकुट धर पोप रोम में राज कर रहा।
इटली इस भूमध्य सिन्धु में नहा रहा है
समय देवता!

मेरी धरती अगर कहीं मीठा गाती है तो वह वेनिस का ही स्वर है
द्वीपों का यह नगर मुझे सबसे प्रिय लगता।
नील-नयन वाले यौवन की मधुर युवतियाँ
रोमन सुख के मोर-पंख बिनती रहती हैं।
जलदेवों की कृपा सदा इस पर छायी है
पीटर की वे चर्च-घंटियाँ बजते-बजते कथा बन गयीं
धार्मिक घंटों के ये स्वर सम्राट रहे थे
उनके उन जलयानों पर वे रोमन केतन
विश्व-विजय की इच्छाओं में लहराते थे
किन्तु रोम तो आज तलक जलता ही आया
मरा पड़ा है एल्बा बनकर मूक समाधी
नेपल्स-रोम के राजाओं की तरह विलासी—
बैठा अपने ज्वालामुखि पर टिरेरियन को घूर रहा है।
नील गगन अपनी परछाईं आज देखने
उतरा बैठा सिसली के उस लघु टापू पर
और सेकता जाता अपने शीत परों को गरम धूप में।
भूमध्य सिन्धु में इतिहासों का जल चमकीला।
कितना वृद्ध सिन्धु यह मेरा, युद्धों से घायल लथपथ सा।
इसीलिये तट के अधरों पर आतप-लाली।

नील नदी की लड़की मिस्र-भूमि आ गयी।
पिता नील का यज्ञ प्रदेश है
जिसने चल कर मृत्यु-रेत पर हरे चरण से पुष्पवती धरती को कर दी।
बुला रही जो निज खजूर बाँहों को ऊँचे उठा उठा कर
थके ऊँट, प्यासे पुत्रों को।
पानी पीकर रेत रुई का फूल बन गयी।
ताड़-खजूरों के इन चिकने पत्तों की पूजा करता हूँ, समय देवता!
बचा रहे मेरे मानव को आँधी की रेतीली साँसों के डसने से।

मेरे पूर्वज पिरामिडों पर उतर रहा है
दोपहरी का दैत्य भयानक अंगारों का लाल पुंज ले।
चाह रहा जो ममी चुरा कर ले जाना
वह दुष्ट सहारा भेजा करता ड्रेगन अपने युगों-युगों से।
रेत पर्वतों को हम छोड़ चुके हैं समय देवता !
रीछ सरीखा खड़ा हुआ है यह कांगो का काला जंगल।
अन्धकार इसका स्वामी है।
पेड़ों के नीचे की यह धरती अब तक क्वांरी है
पुरुष सूर्य की छाया से भी बची हुई है।
नदियां डरते डरते वन को जल दे जातीं
जैसे सारा अन्धकार इस पृथ्वी पर का
कांगो के जंगल में आकर हांफ रहा है।
आदि जीव के वंशज अब भी किसी गुफा में अन्धकार से बातें करते।
कांगों के इन तम-महलों की गुर्राहट को दूर खड़ा वह मेडागास्टर
सुनता रहता
इस दक्षिण के अफ्रीका में श्वेत-श्याम में युद्ध हो रहा
मनुज-मनुज की घृणा जल रही।
यह गुडहोप दिखाई देता
जहाँ कभी वास्कोडिगामा भूला भटका आन लगा था।
प्रकृति दत्त अफ्रीका—जेब्रा
अतलान्तिक औ' हिन्द महासागर में बैठा हाँफ़ रहा है।

श्वेत-सूर्य की धरती यह आस्ट्रेलिया है।
यूकिलप्टिस के गोरे जंगल श्वेत-हँसी में डूबे रहते।
जिनमें मेरी अभी अभी संस्कृति फैली है
समय देवता ! कंगारू का यह प्रदेश है।
गेहूँ के सोने के जल पर केरल-सी की हवा तैरती।
घोड़े की छाती तक ऊँची स्वर्ण-बालियां

श्वेत सूर्य से बातें करतीं।
मीलों लम्बे चरगाहों में ऊन लपेटे भेड़ों का दल चला आ रहा।
क्वीन्सलैण्ड की नसों सरीखी इन नदियों में।
जल का यौवन गंधमान हो बहता आया।
अब पृथ्वी पर सांझ हो रही
मौन खड़ा यह सिडनी बन्दर देख रहा इस पिता सिन्धु को।

समय देवता !
ऐसे समय तुम्हें मेरी पृथ्वी का परिचय प्राप्त हुआ है
जब कि युद्ध की चीलों के मुख से हड्डी की गंध आ रही
युद्धों के दर्रों में मानव लुटा हुआ सा आज एक मैदान चाहता
और चाहता देश-देश की अपनी
कटी हुई नदियों को जोड़ खेत में पानी देना।
धूएँ चिड़ियां धरती का धान खा रहीं।
पिछले सारे सूर्यों ने मेरे खेतों में
अपनी किरने बोकर जीवनदान दिया था।
चांदी के चंदा ने पूनम-दूध पिलाकर
मेरे जमुन-अंगूरों को रसवान बनाया।
आओ रितुपति चन्द्र ! सूर्य ! तुम
अपनी धूप-चांदनी के सौ-सौ चीवर फैलाते
मनुज-घाव पर चैत-शरद की चांदनियों की रेशम-पलकें हवा कर सकें
धरती नीले तारों का परिवार बन सके
इसीलिए खेतों में सन्ध्या केसर बरसे।
ज्वारों के सिंहासन पर तुम बैठे हुए महासिन्धुओ !
बहो ध्रुवों तक, चलो तटों तक
अपने शत उपहारों से मानव को लादो।
नये मनुज के हाथों में श्रम की रेखाएं आल्प्स रचेगा नये रूप में
राइन-वोल्गा-गंगा की इस धरती पर वह

आज नये जलछन्द लिखेगा ।
उसके श्रम के नवल क्षितिज की ओर दौड़ते
सूरज-घोड़े आलोकों की उल्काएँ ले ।
समय देवता ! आज विदा लो
किन्तु तुम्हारे रेशम के इस चमक वस्त्र में
मिट्टी का विश्वास बाँध कर भेज रहा हूँ--
मेरी धरती पुष्पवती है
और मनुज की पेशानी के चरागाह पर
दौड़ रही हैं तूफानों की नयी हवाएँ !

•

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

लकड़बग्घे

तुम कहते हो !
अमुक और अमुक और अमुक
तुमसे क्यों नाराज़ हैं ?
मैं कहता हूँ !
अमुक और अमुक और अमुक
मुझसे क्यों नाराज न हों ?

सड़ा मांस, न जाने कब से पड़ा
दुर्गन्ध में मदहोश है ।
उसे आक्रोश है
कि शेष कोई क्यों जीवित है ?
धड़कता है ?
गूंधा नर्म आटा
नाली है
हर उससे
जो कठिन है
कड़कता है !
हर क्षण टूट पड़ने को उद्यत कगार
चट्टानों का हठ क्या समझे ?
तट की नर्म लिजलिजी रेत

बगूलों का आवेग
बवंडरों का अमर्ष क्या जाने ?
हर झकोरे के आगे झुकने वाली लतर
टूट जाने, पर न झुकने की बात क्या माने ?

अमुक और अमुक और अमुक...
मसलहातों ने उनकी सूरतें बिगाड़ दी हैं
उन्हें इतने मुखोश दे दिये हैं
कि स्वयं अपना चेहरा
उनको पराया हो गया है !
अमुक और अमुक और अमुक...
उनकी आस्थाओं के फूल मुरझा चुके हैं
उद्देश्यों की वीथियां अंधी गलियां बन चुकी हैं
सपनों के पांव पंगु हो चुके हैं
और उनके अन्तर का लावा
जाने कब का धुंआ बनकर
सुविधाओं के आसमान में खो चुका है
वो मर चुके हैं—
नहीं जानते कि मर चुके हैं !

कौच और गलीचे
फ्रिज और कूलर
खरीद कर महज दिखावे को रक्खी
दूसरों की कला कृतियां
विदेशी दूतावासों की पार्टियां
वी. आई. पी. मुस्कानें
    जिनकी दृष्टि की सीमा हैं
    संघर्ष की मंज़िल हैं
वे अजाने बीहड़ मार्गों की मसर्रतें क्या पहचानें ?

अमुक और अमुक और अमुक
जिस दिन मुझ पर प्रसन्न होंगे
मैं समझ लूंगा—
लकड़बग्घे जंगल में व्यर्थ नहीं चीख रहे
    मैं मरणोन्मुख हूँ !

सत्यान्वेषी

मैं इस जन-संकुल वीराने में अकेला खड़ा हूँ।
और मैं सोचता था—मेरे पुरजन, परिजन, मित्र, शत्रु-एक दुनिया
    मेरे पीछे खड़ी हो जायगी
और एक दुर्वार जयकार
    किसी आदिम योद्धा के तीर से छूटी अप्रतिहत शक्ति सा
    आने वाली सदियों के अंधेरों को भेदता चला जायगा
और लोबान और चन्दन से भी प्रियकर
    कोई खुशबू
    दशों दिशाओं में व्याप जायगी
मैं सोचा करता था-जब मैं बच्चा था।

जब मैं बच्चा था
मुझे वह खुशबू बहुत भाती थी
अचानक इतिहास के किसी जर्जर पन्ने से आने लगती थी
किसी लोककथा के प्राचीन नायक की वाणी से महक उठती थी
हमारी पाठशाला के बड़े मेहराबदार दरवाज़े से झरा करती थी—
(जिस पर मोटे, अनगढ़ अक्षरों में लिखा था—सत्मेव जयते।)
और उस बड़ी-बड़ी नुकीली मूंछों वाले, रोबीले चेहरे से

(जो मेरे पिता का था) शराब की बू को पीछे धकेलती
सीली कोठरी में व्याप जाती थी
और उस बगिया में
जहाँ एक छोटे से बालक ने महज़ जिज्ञासा वश—
अपने पिता के प्यारे पेड़ काट दिये थे और
पूछे जाने पर निडर अपनी कुल्हाड़ी दिखा दी थी
और उस कमज़ोर बीमार औरत के होठों से
जिसके चेहरे पर सदियाँ चुपचाप सलवटें बन पसर गयी थीं
और संवत्सर सियाह धब्बे बन कर फैल गये थे।
(जो मेरी माँ थी और जो बार-बार मुझे उस बालक की याद दिलाती थी।)
वह खुशबू। जब मैं बच्चा था। और स्कूल में पढ़ता था।

मैं सोचता था—
मैं बायें हाथ में मशाल लूंगा
और दायें में बिजली की जीभ-सा खड्ग
और मैं अँधेरों को काटता चला जाऊँगा।
काटता चला जाऊँगा उन सारे आवरणों को
जो तुम्हारा चेहरा छिपाये हुए हैं।
एक जलती मशाल। एक चमकता खड्ग
एक व्यापती गंध और तुम्हारा निरावरण मुख—
जब मैं जवान था।

जब मैं जवान था—
उत्साह मेरे पहलुओं में अपनी एड़ियाँ गड़ाये
मुझे सरपट दौड़ाता था।
मैं ही गतिवान तुरंग था
मैं ही ज़ीन पर तना बैठा सवार
मैं ही जलती मशाल था
मैं ही काटता खड्ग

और मैं नहीं जानता, कब मेरे बालों पर सफ़ेदी उतर आयी
और मैं प्रौढ़ हो गया।

मैं प्रौढ़ हो गया
पर मेरे अन्तर की आग वैसे ही प्रज्ज्वलित रही
मैं मशाल को वैसे ही थामे रहा
थामे रहा उस तीक्ष्ण खड्ग को
और महसूस करता रहा अपनी पसलियों में उत्साह की एड़ियाँ

और वे जो तुम्हारे नाम की कसमें खाते थे
मुझे छोड़ गये।
और वे जो अपने को तुम्हारे अनुगत बताते थे
मुझे छोड़ गये।
और वे जो दूसरों को सुगंधि लुटाते थे
मुझे छोड़ गये।
और वे जो तुम्हारे मुखोश चढ़ाये असली चेहरे छिपाते थे
मुझे छोड़ गये।
कि उनमें तुम्हारे साक्षात्कार का सामर्थ्य नहीं था
कि उनके पैरों में सरपट भागने की शक्ति नहीं थी
कि उत्साह ने उनके पहलुओं में एड़ लगाना छोड़ दिया था
कि उनके चेहरे बेनक़ाब हो गये थे।
और आज मैं इस जनाक्रान्त मरु में अकेला खड़ा हूँ
मेरे चेहरे पर बेगिनती झुर्रियाँ हैं
मेरी आँखों की ज्योति मन्द हो रही है
और मेरे सामने तुम्हारा निरावरण मुख है—
जिस पर कभी बड़ी-बड़ी मूँछे उग आती हैं
और कभी सदियाँ सलवटें बन कर पसर जाती हैं।
और एक गंध है, जो सभी ओर से सिमट कर मुझ में व्याप रही है।
और मैं इस जन-संकुल मरु में अकेला खड़ा हूँ।●

वीरेन्द्र कुमार जैन

सावधान, ग़लतफ़हमी में न रह जाना

सावधान, ग़लतफ़हमी में न रह जाना !
हम सिर्फ़ धरातल पर नहीं हैं :
हम सिर्फ़ तुम्हारी पार्लमेंट की फर्श पर नहीं हैं ।
(तुम्हारी आँखें जितना देख पाती हैं,
हम सिर्फ़ उतने ही नहीं हैं !)
ये वोट ओ' विधान नहीं हैं हमारे विधाता ;
हम दो-टूक परमाणु के पार की
आगामी दुनिया के अनपहचाने शास्ता ।
अनपहुँचे ग्रह-नक्षत्रों की प्लेटों में
सजा हुआ है हमारी कल की सुबह का नाश्ता !
जिनेवा के शिखर-सम्मेलन नहीं
हमारी गति-विधियों के निर्णायक ।
सावधान, तुम्हारे आणविक शस्त्रों और मिसाइलों में
पल रहे सत्यानाश—
छू नहीं सकते हैं उस नूतन दुनियाँ को,
जो हमारे सीनों की आग में ढल रही है,
जो हमारे बेरोक बहते खून में उबल रही है,
जो हमारी पुतली की रोशनी में उजल रही है !

सावधान, ग़लतफ़हमी में न रह जाना !
हम सिर्फ़ तुम्हारी इस सिमटती भूगोल तक

सीमित नहीं है—
कि जिसकी टूटती सरहद्दों वाली शतरंजी पर
खेल रहे हो तुम,
अपने सर्वनाशी स्वार्थों और अहंकारों की
आत्मघातक बाज़ियाँ !
हम सिर्फ़ रूस, चीन, पूर्वी जर्मनी, फिनलेण्ड
पोलेण्ड के लाल झंडों तक महेदूद नहीं हैं ।
ये स्तालिन, माओ, ख्रूश्चेव
हमारी नियति के आखिरी ध्रुव-पुरुष नहीं हैं !

कृष्ण, बुद्ध, महावीर, मोहम्मद, ईसा, नाज़रीन,
लिंकन, टॉम पेन, मार्क्स, लेनिन,
अरविन्द, रवीन्द्र, आइन्स्टीन की चिर प्रगतिमान, वह्निमान,
चिरन्तन विद्रोहिनी परम्परा के हम हैं शोलाग़र निशान ।
हम बग़ावत की आग की वे अविच्छेद्य नदियाँ हैं,
जो हर देश-काल की भूमिगत सरहद्दें तोड़ कर
अनन्तिनी भूमा के आरपार बहती हैं ।
कि जिनकी हर लहर के भंग में विलियम ब्लेक,
वाल्ट ह्विटमैन, रोमाँ रोलाँ ओ' हावर्ड फास्ट की
अमृता भारती गाती है !
कि जो हर पल, हर अगले क़दम पर
शून्य में से सत्ता का निर्माण करती चलती है ।

सावधान, ग़लतफ़हमी में न रह जाना !
हम सिर्फ़ धरातल पर नहीं हैं :
हम सिर्फ़ तुम्हारी पार्लमेण्ट की फ़र्श पर नहीं हैं ।
हम सिर्फ़ हड़तालों, जुलूसों, चुनावों तक सीमित नहीं हैं—
जिन्हें तुम्हारी सत्ता की संगीनें और गोलियाँ

कुचल सकती हैं :
जिन्हें तुम्हारे चाँदी-सोने के हाथी रौंद सकते है !
हम वह शै हैं, जो पीड़न से काँपती
धरती के गर्भ में आग के तीर से सनसना रही है।
हम समुद्रों में, हवाओं में, आसमानों पर,
ईथर की सूक्ष्मतम लहर में अनिवार छाये हुए हैं

सावधान, शोषक सत्ता-स्वामियो, युद्ध-स्वामियो
इन्सान की आत्मा के सौदागरो,
समेटो ये नक्शे अपने, समेटो ये हदें अपनी,
समेटो ये दुकानें अपनी।
कि लो, हर दिशा की कुँवारी मरियम का
गर्भ काँप उट्ठा है—
कि धरती, आसमान, हवाओं और समुद्रों के
घायल सीनों को चीर कर,
हर निपीड़ित माँसूस आत्मा के आँसू से—
अब हम किसी क्षण एक विभ्राट विप्लवी
ज्योति की उल्का-से टूट पड़ने को हैं—
जो एक ही बार में तुम्हारी सत्ता के
सिंहासन उलट देगी :
जो एक ही बार में दुनिया का चेहरा पलट देगी !

सावधान, ग़लतफ़हमी में न रह जाना !
हम सिर्फ़ धरातल पर नहीं हैं।
हम सिर्फ़ तुम्हारी पार्लमिण्ट की फ़र्श पर नहीं हैं।
हम सिर्फ़ कोई राजनीतिक पार्टी,
या तुम्हारी संसद के विपक्षी दल नहीं हैं।
हम स्वयम् धरती की आखिरी इच्छा हैं :
हम स्वयम् महाकाल का अनिवार आगामी चरण हैं।●

रामदरश मिश्र

होने और न होने के बीच

मैं हूँ—
वह नहीं जो हूँ
वह, जो मुझे पहना दिया है
कीलें ठोंक ठोंक कर
और यह पहनाया गया 'मैं' भी
किसी दूसरे के शरीर का है
कहीं से ढीला
कहीं से अंगों को कसता हुआ
स्वयं दरकता हुआ

जब रास्तों से निकलता हूँ
भीड़ से गुजरता हूँ
तो यह पहनाया गया 'मैं'
बड़ी शान से फहराता रहता है ध्वजा की तरह
जिस पर लोग
या तो विरोधी दलों की तरह थूकते हैं
या अदब से बिछ जाते हैं
दल के अंधभक्तों की तरह
और 'मैं' के नीचे कुचला हुआ 'मैं'
तड़पता रहता है भीड़ में खोये किसी एकांत के लिए
जिसे वह अपने को दे दे।

मैंने कितना ज़ोर मारा था
कि फाड़ कर फेंक दूँ इस 'मैं' को
उनके मुँह पर
जिन्होंने पहनाकर कीलें ठोंक दी हैं
और भीड़ में से गुजरूँ तो हल्ला करूँ—
साथियों
यह 'मैं' मेरा नहीं है
यह कुछ खिताब बाँटने वाले हाथों द्वारा पहनाया गया है
लेकिन यह कभी नहीं हो सका
बार बार लगा
कि पहनाने वाले हाथों का दबाव
मेरे खून तक, मेरी आवाज़ों तक कसा हुआ है

और अब तो लगता है
कि भीड़ से गुजरने का यह अहसास ही रीत गया है
लगता है
कीलें मेरी हड्डियों के रस में भीग गयी हैं

किन्तु अब भी कभी
जब कोई एकांत
मेरे होने और न होने के द्वन्द्व को सुलगा जाता है
तब कीलें जोर-जोर से चुभने लगती हैं
पहनाया गया 'मैं'
दूसरे के मैले वस्त्र की तरह गंधाने लगता है
और खून उछल उछल कर
चाहता है उछाल देना कीलों को
और गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाना
रास्तों पर, गलियों में, बाजारों में

और जब यह नहीं हो पाता
तो वह अपने को एक पर्त और लपेट कर
लेट जाता है मार खाये बच्चे की तरह
और ध्वजा की तरह हिलता हुआ 'मैं'
चल देता है भीड़ की ओर
जहाँ इस पर लोग
या तो थूकते हैं
या जयजयकार उछालते हैं आँखें मूँद कर।

सांस्कृतिक एकता

यह दिल्ली है
यहाँ भी रास्ता काट जाती एक बिल्ली है
यहाँ भी पत्रा देखकर
जनवादी घोषणाओं की शुरुवाद होती है
यहाँ भी बड़े-बड़े सरकारी चौपाल हैं
जहाँ दिन भर केवल बात होती है
यहाँ भी खादी के नीचे कोकशास्त्र
और टेरेलिन के नीचे हनुमान चालीसा होता है
यहाँ भी शीशे की जगह एक चेहरा
और चेहरे की जगह एक शीशा होता है।
यहाँ भी चौराहे-चौराहे टोटके
बाँहों में ताबीज पड़े होते हैं
यहाँ भी नेता की सूरत देखकर
आदमी भाग खड़े होते हैं
यहाँ भी कुत्ता कुत्ते पर भूंकता है

और गदहा गदहे पर रेंकता है।
ओ मेरे महान देश !
शहर से गाँव तक
सिर से पाँव तक
तुम्हारी कितनी बड़ी सांस्कृतिक एकता है।

•

दुष्यन्त कुमार

एक आशीर्वाद

जा,
तेरे स्वप्न बड़े हों
भावना की गोद से उतर कर
जल्द पृथ्वी पर चलना सीखें
चाँद-सितारों-सी अप्राप्य सच्चाइयों के लिए
रूठना मचलना सीखें
हँसें
मुस्कराएं
गाएँ
हर दिये की रोशनी को देख कर ललचाएँ
उँगली जलाएँ
अपने पाँवों पर खड़े हों
जा,
तेरे स्वप्न बड़े हों !

राह खोजेंगे

ये कराहें बन्द कर दो
बालकों को चुप कराओ

सब अँधेरे में सिमट आओ यहाँ नतशीश
हम यहाँ से राह खोजेंगे ।

हम पराजित हैं मगर लज्जित नहीं हैं
हमें खुद पर नहीं
उन पर हँसी आती है
हम निहत्थों को जिन्होंने हराया
अँधेरे व्यक्तित्व को अंधी गुफाओं में
रोशनी का आसरा देकर
बड़ी आयोजना के साथ पहुँचाया
और अपने ही घरों में कैद करके कहा :
"लो तुम्हें आज़ाद करते हैं !"

आह !
वातावरण में बेहद घुटन है
सब अँधेरे में सिमट आओ
और सट जाओ
और जितने आ सको उतने निकट आओ
हम यहाँ से राह खोजेंगे ।

ग़ज़ल

मत कहो, आकाश में कुहरा घना है,
यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है ।

सूर्य हमने भी नहीं देखा सुबह से,
क्या करोगे, सूर्य का क्या देखना है ।

इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछी है,
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है ।

पक्ष औ' प्रतिपक्ष संसद में मुखर हैं,
बात इतनी है कि कोई पुल बना है ।

रक्त वर्षों से नसों में खौलता है,
आप कहते हैं क्षणिक उत्तेजना है ।

हो गयी हर घाट पर पूरी व्यवस्था,
शोक से डूबे जिसे भी डूबना है ।

दोस्तो ! अब मंच पर सुविधा नहीं है,
आजकल नेपथ्य में संभावना है !

●

केदारनाथ सिंह

धानों का गीत

धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे
उगेंगे हमारे खेत में,
आना जी बादल जरूर।
चंदा को बाँधेंगे कच्ची कलगियों
सूरज को सूखी रेत में
आना जी बादल जरूर !

आगे पुकारेगी सूनी डगरिया
पीछे झुके बन-बेंत
संझा पुकारेंगी गीली अँखड़ियाँ
भोर हुए धनखेत
आना जी बादल जरूर,
धान कपेंगे कि प्रान कपेंगे
कपेंगे हमारे खेत में,
आना जी बादल जरूर !

धूप-ढले तुलसी-बन झरेंगे
साँझ घिरे पर कनेर
पूजा की बेला में ज्वार झरेंगे
धान-- दिये की बेर,
आना जी बादल जरूर,

धान पकेंगे कि प्रान पकेंगे
पकेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरूर !

झीलों के पानी खजूर हिलेंगे
खेतों के पानी बबूल
पछुआ के हाथों में शाखें हिलेंगी
पुरवा के हाथों में फूल
आना जी बादल जरूर,
धान तुलेंगे कि प्रान तुलेंगे
तुलेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरूर !

निराकार की पुकार

कल उगूंगा मैं
आज तो कुछ भी नहीं हूँ---
धूल, पत्ती, फूल, चिड़िया, घास, फुनगी---
आह कुछ भी तो नहीं हूँ !

कल उगूंगा मैं।
भोर से पहले तुम्हारे द्वार पर
या रास्ते में
खंडहरों के पास
या फिर किसी अनदेखे, उपेक्षित कूल पर
कल उगूंगा मैं !

ओ सुनो
बीज हूं मैं एक ऐसे अनउगे दिन का—
जो तुम्हारी मुट्ठियों से किसी हल्के झुटपुटे में
कसमसा कर गिर पड़ा था
और जिसको किसी खुलती आँख ने—
वीरान, जंगल, पहाड़ों या गुम्बदों या पुलों की मेहराब से
उठते हुए देखा नहीं है।

कल उठूंगा मैं !
तुम मुझे चीन्हो न चीन्हो,
बहुत संभव है कि कल तड़के तुम्हारे बिस्तरे पर
एक छोटी सी किरन बन कर झरोखे से गिरूँ
या एक झोंके की तरह आकर कँपा जाऊँ तुम्हें
या चुप तुम्हारे बगीचे में
एक छोटा सा नया पौधा कहीं बनकर उगूं !
या फिर तुम्हारी बाँह पर
सहसा विजय की काँपती जयमाल बन कर चू पड़ूं।
या कुछ नहीं तो
बहुत संभव है किसी सागर किनारे
दूर पर जाते हुए जलयान की शुभकामना में
एक बुझती साँझ का रूमाल बनकर हिल उठूं !
एक नन्हा बीज मैं अज्ञात नवयुग का
आह, कितना कुछ -- सभी कुछ -- न जाने क्या क्या
समूचा विश्व होना चाहता हूँ !
भोर से पहले तुम्हारे द्वार—
तुम मुझे देखो न देखो—
कल उगूंगा मैं !

बढ़ई और चिड़िया

वह लकड़ी चीर रहा था

कई रातों तक
जंगल की नमी में रहने के बाद उसने फैसला किया था
और वह चीर रहा था

उसकी आरी कई बार लकड़ी की नींद
और जड़ों में भटक जाती थी
कई बार एक चिड़िया के खोंते से
टकरा जाती थी उसकी आरी

उसे लकड़ी में
गिलहरी की पूंछ की हरकत महसूस हो रही थी
एक गुर्राहट थी
एक बाघिन के बच्चे सो रहे थे लकड़ी के अंदर
एक चिड़िया का दाना गायब हो गया था

उसकी आरी हरबार
चिड़िया के दाने को
लकड़ी के कटते हुए रेशों से खींचकर
बाहर लाती थी
और दाना हर बार उसके दाँतों से छूटकर
गायब हो जाता था

वह चीर रहा था
और दुनिया दोनों तरफ

चिरे हुए पटरों की तरह गिरती जा रही थी

दाना
बाहर नहीं था
इसलिए लकड़ी के अंदर जरूर कहीं होगा
यह चिड़िया का खयाल था

वह चीर रहा था
और चिड़िया खुद लकड़ी के अंदर
कहीं थी
और चीख रही थी।

•

नन्द चतुर्वेदी

दरवाजा खोलने के सिवाय

पहले लोगों का भाग्य था
गिनती करने के बाद
वे फिर गिनती कर सकते थे
उन सभी भयानक रातों की
जिन्हें वे समझते थे
सूर्य के न होने की एक स्थिति
वे उसका वर्णन करते थे
उसके बाद सूरज निकल आता था
अंधकार की पीठ वे देख सकते थे

अब नहीं, अब बिल्कुल भी नहीं
एक गणना के सिरे पर लटकती हुई रात
तलवार की तरह चमकती है
दिन जब होता है आकाश और पृथ्वी के बीच
आदमी सिर्फ अभ्यासवश चलता है
सड़क और शहर के बीचों बीच
बावजूद दिन के
रोने लगता है जैसे रात बीतेगी ही नहीं
गिनती करते-करते और कर-चुकने के बाद भी नहीं

आदमी के दबदबे को क्या हो गया है भाई !

एक घटना विहीन हाथ से
जो कोई धकेलेगा रात
देख लेना वह कहीं नहीं जायेगी
सिर्फ़ हथेली पर अंकित होगी
पेट और मुँह पर
एक हरे-भरे पेड़ पर लटकती रहेगी

शिला जैसी जिन्दगी गले में बाँधे
घरों में दिन दुपहरी
उल्लुओं की आतंक भरी भाषा के साथ
रात का सन्नाटा भरा
यथार्थ फैला है

कुएँ के पास भविष्य पैर लटकाये बैठा है
सिर्फ़ एक मोटा आदमी अपनी तोंद
बार-बार पीटता है
और एक तिलस्म की दुनिया में
हाथ फैला कर
कभी निकालता है
कबूतर, कभी नदी, कभी सपने
कभी स्मृति
पास बैठा सिपाही कुत्तों और लड़कों को
एक ही ढेले से मारता है
किसी भी खेल से रात की त्रासदी
कम नहीं होती

आदमी के पास
अपनी पूरी शक्ति के साथ
दरवाज़ा खोलने के सिवा कुछ नहीं बचा है

इस इलाके में जंग छिड़ी है

इस इलाके में जंग छिड़ी है
चुपचाप
चुपचाप सबने बन्दूकें इकट्ठी कर ली हैं
तलवारें, चाकू, बघनखे
तेल में डूबी लम्बी कोड़े जैसी
साइकिल की जंजीरें
पत्थर, ईंट, इकट्ठे कर के
वे तैयार हैं एक जंग के लिए
तैयार हैं अपने दोस्तों पर वार करने के लिए
वार करने के लिए, अपने दोस्तों पर
उन्होंने मोर्चे चुने हैं
छोटी छत, एक मासूम सी गली
यहीं से अचूक निशाना लगायेंगे और
छिप जायेंगे, छटपटाते हुए देखेंगे
छोटे मादरजात नंगे, भुक्खड़ लड़के को
उस लड़के को
जिसे कल एक फूल की कविता पढ़नी थी
सुगन्ध के लिए और बहतरीन हिन्दुस्तान के लिए

ईमानदारी बरतने के लिये
और आंदोलन चलाने के लिए
छोटे लड़के पहली कतार में
खड़े किए गए हैं
खड़े किए गए हैं इसलिये खड़े है
लड़कों को मोर्चे पर किया गया है
झगड़ा मुर्दों के लिए है
कब्रिस्तान मुर्दों का है जीवित लड़कों के मरने के लिए

बहादुर लोग, सभ्य और सज्जन लोग
मोर्चा लगाये हैं बच्चों की लाशें बहाने के लिए
रुके हुए दरिया में बहाने के लिए
बच्चों की लाशें
कल इन बच्चों को खुले मैदान में
कबड्डी खेलनी थी
और जिनके नाम एक टीम में थे
मजहब की टीम में नहीं
मानवीय रिश्ते की टीम में

कल यहाँ दंगा हुआ तो
मैं शोकातुर
न रामायण पढ़ूँगा, न बाइबल
न कुरान
सिर्फ अपनी कविता को फिर से लिखूंगा
और लिखकर पढ़ूंगा अपने ही बच्चे का नाम
अपने ही बच्चे का नाम जिसे कल मैंने
एक रंग की नयी डिबिया देने को कहा था
जिससे वह स्कूल में एक सतरंगा फूल
बनाने वाला था
हिन्दुस्तान की जमीन और आबोहवा का
नदियों और आसमान का और समुद्र का फूल
खून के फूल और बच्चे का नाम
पाठकों ! आप सब को बता दूँगा
जो पढ़ने के लिए उत्सुक हैं
प्रेम की और करुणा की कवितायें

●

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

१. भेड़िया

भेड़िया गुर्राता है ।
तुम मशाल जलाओ ।
उसमें और तुममें
यही बुनियादी फ़र्क है
भेड़िया मशाल नहीं जला सकता ।

अब तुम मशाल उठा
भेड़िये के करीब जाओ
भेड़िया भागेगा ।

करोड़ों हाथों में मशाल लेकर
एक एक झाड़ी की ओर बढ़ो
सब भेड़िये भागेंगे ।

फिर उन्हें जंगल के बाहर निकाल
बर्फ़ में छोड़ दो
भूखे भेड़िये आपस में गुर्रायेंगे
और एक दूसरे को चीथ खायेंगे ।

२. आग

मैंने उसे फूल दिया
उसने उसे आग में बदल लिया।
सुगंधि धधक कर रोशनी बन गयी
और कोमलता ने मेरे चेहरे पर थूक दिया।

उसने कहा
लिखो,-'आग'
दिन भर के थके माँदे चंद
अनपढ़ खेतिहर मजदूरों ने
सिर झुका, पहली बार
अटक अटक कर
स्लेट पर खड़िया से लिखा
'आग'।

और जब वे लिख चुके
एक सुगंधि-सी छा गयी।

तुम फिर सुगंधि खोज रहे हो ?

आग होकर भी
सदियों से
जो इस लिखने-पढ़ने से वंचित रहा हो
पहले उसकी ताकत खोजो।

उसने उनसे पूछा–
'आ' से ?

सबने कहा–'आदमी'
फिर उसने पूछा—
'ग' से ?
सबने कहा–'गधा'।

वह मेरी ओर देखने लगी :
समय आ गया है
जब इन्हें आदमी और गधे का
अन्तर समझाना होगा
इन्हें आदमी होने का अहसास कराना होगा।

वह फिर मजदूरों की ओर मुखातिब हुई—
एक बार फिर से लिखो साफ साफ—
आग।
वे फिर सिर झुका लिखने लगे
इस बार अधिक आत्म विश्वास के साथ।
मैंने देखा
स्लेट पर चलती उनकी अँगुलियाँ
लौ में बदल रही हैं
और पूरा शब्द लिखते ही
उनका हाथ मशाल में बदल गया है

'लो अब तुम चाहो, इसे उठा लो'।
और इस तरह उसने
मेरा फूल मुझे वापस कर दिया।

(२)

किसी को कुछ देने का अभिमान
मेरा जाता रहा।

उसके जाते ही मैंने महसूस किया
चारों तरफ केटलियाँ खौल रही हैं
मैं भाप बनकर उड़ रहा हूँ।

शब्द जिन्हें मैं बर्फ़ की सिल्लियों पर भी
अकेलो चींटी सा चला ले जाता था
अब अंगारों से धधक रहे हैं।
उनसे मैं खेल नहीं सकता
वे युद्धभूमि में बदल गये हैं।
वह मजदूरों की ओर मुखातिब थी
साथियो ! महीनों से आपकी पगार रुकी हुई है
मालिकान दरख्वास्ते हज़म करते जा रहे हैं
आप फाके पर फाके कर रहे हो
अब उनकी कोठियों का घेराव करने के अलावा
और कोई चारा नहीं
क्या कहते हो ?

मैंने मजदूरों की आँखों की ओर देखा
कच्ची मिट्टी की गोलियाँ
आग में तप कर
सुर्ख़ हो गयी थीं
यह सुनते ही गुलेल की तरह खिंच गयीं
छूटने लगीं---
घेराव ? आग लगा देंगे, आग !'

फूल किसी एक का होता है
आग सबकी होती है,
सबको एक करती है।'
उसने मेरी ओर देखा और कहा।

वे उठ खड़े हुए
जुलूस की शक्ल में बढ़ने लगे
जैसे जंगल की आग
किसी गिरिशिखर की ओर बढ़ रही हो।

पाँच सौ वर्षों से
जिन रूपाकारों की मैंने खोज की थी
वे उस आग में पड़ते ही
धधक उठे और भहरा कर गिर पड़े,
सब साँचे पिघल गये,
शब्द पहचान से परे हो गये,
मैं अपने को खोजने लगा।

तुम फिर अपने को खोज रहे हो ?

'अब तुम्हारी कोई पृथक इयत्ता नहीं
अब केवल आग है—
सबसे मिलकर एक आग।
क्या तुम एक लपट में
अलग अलग चिनगारियों को पहचान सकते हो,
उनको जिनसे वह उत्पन्न हुई
और उनको, जिनसे वह फैलेगी ?'

मैंने देखा—
वह उस लपट का अंग है
फूल की एक पंखुरी की तरह
मैं उसे सहेज कर नहीं रख सकता।

(४)

वह आग मेरे करीब आती जा रही है।
कभी मैं किसानों की चिलमों में
अंगारे की तरह दमकने की कामना करता था,
मज़दूरों की बीड़ियों में
सुलगने के ख्वाब देखता था
उनके चूल्हों में धधकना चाहता था
अब—
उनका और मेरा चेहरा एक हो गया है।

हम सब एक अंगार हैं, एक लपट, एक आग,
एक शब्द, एक अर्थ, एक राग,
एक चरण, एक यात्रा, एक राह,
एक संकल्प, एक नारा, एक चाह,
समर्पित
एक क्रान्ति को।

•

राजीव सक्सेना

अस्तित्व का गीत

एक महाकाव्य-सी दुनिया, और
शब्दों सा हमारा अस्तित्व
सार्थकता कहाँ रेखांकित करते हो ?
महत्ता है निर्थरक महत्त्वहीनों के बिना
वे जो नहीं रहे, उनके अभाव संदर्भ में
नया अर्थ पाते हैं वे जो आज हैं
और फिर कल नया संदर्भ छोड़ जायेंगे।

संदर्भ छोड़ जायेंगे तुम और मैं
एक नया समास पद जोड़कर,
वैसे तुम और मैं निरर्थक हैं
अकेले-अकेले, संज्ञाहीन क्रियाहीन।

हर एक वाणी की, हर एक गन्ध की,
विभिन्न रूप और रंग की
अर्थवत्ता है हमारे-तुम्हारे सम्बन्धों से,
टूट जाती है संगीत लहरी
मरती नहीं, जीती है मौन उद्वेलन में,
पीड़ा के लाउंज में
फिर ये सुख की प्रतीक्षातुर
सिगरेट पीता खड़ा रहता है काल।

मार्च की सुबह के मुसकुराते फूल, और
जुलाई की शाम की बावली बदलियाँ,
दिसम्बर की दोपहर की नग्नोष्ण धूप
रह जातीं अनदेखी, अनगायी,
अगर झाँका न होता, हाँ, आँका न होता
हमने आँखों की खिड़कियाँ खोलकर
मन की अँधेरी गलियों को,
अतीत से प्रकट हो, जो भविष्य में ओझल हैं।

जो भविष्य में ओझल हैं सीढ़ियाँ,
वे नीचे कहीं अतीत से प्रकट हुईं,
वर्त्तमान की सीढ़ी पर खड़े हुए
अस्तित्व के अन्तर में उलटी उतरती हैं,
गहराई, और गहराई, और-और गहराई;
ऊँचाई पर चढ़ने का हर उपक्रम।

टन-टन-टन-टन-टन-टन घड़ियाँ और
कलेण्डर के पृष्ठ वर्त्तमान को
बाँधेंगे कहाँ, वह आने के पहले ही
अतीत बन जाता है, अविश्वासी
प्रेमी-सा आड़ में खड़ा हो जाता है
भविष्य के ड्राइंग रूम में
सुनता है हमारा वार्त्तालाप अन्य क्षण से,
क्या जाने उसे अहसास है
उसके उपस्थित स्पर्श और सुगन्ध हमें
अजाने ही सचेत कर देते हैं।

अविश्वासी खा जाता है धोखा तो इसलिए
कि वह भी है महत्त्वपूर्ण

हमने जो कहा नहीं, हमने जो किया नहीं,
कहने और करने के बीच में।

कहने और करने के बीच में
कभी एक ही नदी में पाँव नहीं रख सकते,
अस्तित्व एक लहर की तरह है,
जो अपनी स्थिति में है और नहीं भी है,
हो गयी है रूपायित एक नयी धारा में;

होना और न होना कोई अर्थ नहीं रखता
जहाँ हर वस्तु सिर्फ हो रही है;
अस्तित्व को खण्ड-खण्ड कर रहा है अनस्तित्व,
और गर्भ में जन्मती है नयी सम्भावना;

हर शून्य पूर्ण है अनगिनत अभावों से,
रूपातुर सम्भाव्यों से। हाँ एक ना है,
और ना एक हाँ है, जिनका योगफल
हाँ-ना दोनों नहीं हैं। ठहरे हुए क्षण हैं
एक बेचैन गति का विशिष्ट रूप।
विशिष्टता बढ़ जाती है सामान्यता की ओर
नये विशिष्ट को जन्मती।

जन्मती है जो अराजकता हम सबके
व्यक्ति अस्तित्व से और हम सब
आत्म रक्षा के लिए करते हैं
एक-दूसरे का सामना दुर्दमनीय;
भ्रम जाते हैं कि हमने कुछ खो दिया है,
हमने कुछ ले लिया है इस क्रम में

हम वह नहीं हैं जो थे और जो होंगे;
हम जन्मते हैं एक सामूहिक व्यक्ति को
जिसके साथ और साथ ही जिसके विरोध में
हम जीते हैं मृत्यु-भय लिए।
अराजकता ढल जाती है स्वयं एक व्यवस्था में
अचेत हम रहें तो धारण कर हिंस्र रूप,
सचेत हों तो शांतिपूर्ण रूपांतर।

रूपान्तर दर्पण में हर बार,
नये सिरे से अपने से पहचान,
अपने से बातचीत बन गयी
लोगों से बात, और लोगों में भाषण
बना अपने से सम्भाषण,
भीड़ में अकेला मन, अकेले में अन्दर
असंख्य चेहरों की भीड़
एक नीड़ सा मिला
किसी स्वर की झकझोरती मोड़ में
और मौन लगता है प्राणान्तक;

क्षण-क्षण जीना और क्षण-क्षण मरना
कभी बन जाता है सदियों के आर-पार
शाश्वत अनहोना; कितना सहज है
रूपान्तर सदियों का क्षण में
और क्षणों का वर्षों और सदियों में,
एक ज़िन्दगी का कई ज़िंदगियों में
और कई ज़िंदगियों का एक ज़िंदगी में।

काल एक सुविधा का माप है

हमारी गति का;
काल कोई नहीं, हम हैं।

हम हैं जो अस्तित्व का ताप सह दहकर
बन जाते हैं अरूप भाप
छू लेते हैं आसमान, बरस जाते हैं ठण्डे मन
बूंद-बूंद कण-कण में
और अंकुरित आँखें फाड़ फिर रो पड़ते हैं
अस्तित्व का ताप सह-दहकर;

सार्थक था ताप या ठण्डापन ?
दोनों एक-दूसरे के बिना हैं असम्भव, दोनों का
एकात्मिक संयोग शायद सार्थक है।
वृक्ष-शीश अंकुर के लिए ही तो जीते हैं।

गुलाब हो या कैक्टस,
अपने नन्हें से गमले में अपना ही अंश है।
जीवन का समस्त अर्जित फल
छोड़ जाना चाहते हैं हम उस शिशु के रूप में
जिसने हमें विवश कर दिया
फल खाने के लिए वर्जित से वर्जित।

वर्जित फल के एक ओर सर्वशक्तिमान
और दूसरी ओर नग्न वृत्तियाँ···
खोने के लिए नहीं है जिनके पास कुछ भी,
पाने को एक दुनिया है, जहाँ पर
स्वयं एक सृष्टि के स्रष्टा वे विश्वामित्र।

वर्जनाओं के प्रति सदा विद्रोह
सहज स्वभाव है नित नयी सर्जनाओं का ।

स्वर्गोपम उपवन में आदिम आदम
और कॉफ़ी हाउसों में बैठी हुई आज की पीढ़ी
शैतान साँप की आँखों में झाँक रहे हैं
अपने अन्दर की भूखी-प्यासी
तीन सौ पैंसठ लेविथेयन आँखों से,
फिर कोई नया फल, फिर कोई नया फल !

स्वर्ग कहाँ है ? शायद किसी नर्क की
वर्जित दीवारों को तोड़ने के श्रम में ।

नर्क न तो कोई अन्य है,
और न नर्क है स्वयं अपने अन्दर,
नर्क है वहाँ, जहाँ लघुतम समापवर्त्तक
आकांक्षा से वर्जना तुली बैठी है
पलड़ा बराबर किये ।
एक ममघोंट नर्क है अस्तित्व में गतिरोध ।

गतिरोध की चट्टान पर पछाड़ खाती हुई,
टूटती हुई, लहरें कितनी बेबस,
कितनी असहाय मालूम होती हैं, लेकिन
पूछो क्षण-क्षण टूटते हुए कण से
जिन्हें लहरें ले जाती हैं साथ में;

अपनी राह जाते जल-यानों को
वे चट्टानें बन जाती हैं दिशा-बोध
जब और कोई चिह्न नहीं होता;

चट्टान, लहराता हुआ सागर,
और जलयान, हमारे ही अन्दर है ।

अन्दर हैं जो दुनियाएँ
वे बोलते हुए संवेदन से जुड़ी हैं बाह्य जगत से,
कलाएँ अपनी कुंजी से
उनके द्वार खोलते हुए थकती हैं,
द्वार पर द्वार, द्वार पर द्वार,
द्वार पर द्वार, अनन्त द्वारों पर द्वार;

वे जो दुनियाएँ अनखोजी रह गयीं
कम रहस्यपूर्ण नहीं थीं,
उनसे जो खोजी गयीं,
और व्यक्तिगत दुनियाओं का विसर्जन—
फिर उन्हें लौटाकर लाने का द्वार
बन्द कर देता है, क्षतिपूर्ति असम्भव है ।

गूँजते रह जाते हैं संवेदनशील शब्द,
जिनसे फिर आने वाले लोग
अपनी-अपनी दुनियाओं का
नया सृजन करते हैं

सृजन करते हैं मेरे-तुम्हारे
और हमारे व्यक्तिगत जगत जो शब्द,
उनमें हैं कितना सामञ्जस्य, कितना विरोध है,
कितनी लय और कितनी अलय है,
इस पर निर्भर हुआ करता है
नये विश्व-बोध-काव्य का सौन्दर्य ।

हम सब शब्द हैं, संगत-असंत,
सार्थक-निरर्थक, सब अपनी गरिमा में
मस्तक उठाकर उद्यत हैं अपनी जगह पाने को
और इस काव्य को कोई नहीं रचता :
शब्द स्वयं संघर्ष या सन्धि कर
अपनी-अपनी जगह बना लेते हैं जुटकर
और हर बार नयी-नयी लगती है
आत्मांश-सी प्रिय एक महाकाव्य-सी दुनिया ।

आत्म-निर्वासन

[१]

एक और दिन फेंक गया है
कोई मेरे सामने
मुझे दीन-हीन भिखारी समझ कर
खोटे-सिक्के को सार्थकता दूँ भी
तो कैसे दूँ ?
यहाँ अस्पताल है
नो हार्न प्लीज
बाहर लोग चल रहे हैं खामोश
उस वायरस से भयभीत
जो अखबार की खबर की तरह
फैल जाता है अनायास
शहर भर में
लोग भीड़ क्यों हैं,
जुलूस क्यों नहीं बन जाते ?

मैं रोग शैया से उछल कर
बाहर पहुँचने को कसमसाता हूँ
कायर कण्ठ में घुमड़ने वाले
क्रान्तिकारी नारे की तरह
अच्छा....मेरे रोग से चिन्तित हैं
सारे अधिकारी
नगर में है सफ़ाई का अभियान
लोगों के जमा होने पर है पाबंदी
सिर्फ़ पूजा और कीर्तन खुले हैं ।
अखबार रोज छापते हैं
रोग से बचने की हिदायतें
कहीं अश्रुगैस-लाठी से
वे ला रहे हैं
लोगों को होश में
वे मेरे पास आये हैं
कहते हैं : मैं मर कर स्वर्ग नहीं
जाता हूँ क्यों कर
देशभक्ति की खातिर ।

उनके देशभक्ति की बातें बघारते ही
मुझको लगता है
वे अभी छुरा भोंक देंगे
मेरे पलक मारते ही
मेरी मा पड़ी है मरणासन्न
यहीं किसी वार्ड में
वे किसी थैलीशाह की खूब खेली-खायी
खूसट रखेल ले आते हैं
कहते हैं : ले पूज, यह तेरी माता है ।

वे हर जेल को कहते हैं अस्पताल
और हर अस्पताल को घर
और हर घर पर वे स्वयं बैठे हैं
काले मणिधर
और अपने ही घर में
मेरा अपना निर्वासन ।

[२]

मनहूस सूरज आँखें मींचकर
बदबूदार कै कर देता है
मेरी हथेली पर
एक नगर गंधाने लग जाता है
छितरा सा बिखर कर
मैं शायद बीमार हूँ
अकेला हूँ
डाक्टर खुद अपना इलाज कर रहे हैं
झगड़ रहे हैं अपने डायग्नोसिस पर
मुझे जिन्दा ही मुर्दाघर में छोड़ कर
मरे हुए लोगों के बीच ।
मैं सोचता हूँ
इनमें से कितने लोग जीवित हैं
क्या वे जाग सकते हैं ?
मेरी आवाज की ठोकर खाकर
परिवेश है एक अस्पताल
पाक साफ
माफ़ हैं सौ खून
नर्स सदा मुसकुराती ही रहती हैं

और मरीज़ सदा चीखता है
स्वस्थ देह के लिए गेह के लिए ।
मैं जानता हूँ
मौत सबको खा लेती है एक दिन
मैं उससे छीनता हूँ एक-एक मीठा क्षण
चूसता हूँ चिविंग गम
क्या एक और ग़म
तुम मुझे दे सकते हो
फूलों का गुलदस्ता
और फलों का रस लेकर
प्यार के आँसू बहाने वाले
ओ आध्यात्मिक !
मेरी आँखों के सामने से हट जाओ ।
मैं एक एक्स-रे दे सकता हूँ
पारदर्शी शब्द
जिससे देह दर्शन नंगा हो सकता है
शल्याघात की क्षमतावालो, यहाँ आओ
वे जिनके हाथ नहीं काँपते
इस्पाती औज़ारों को पकड़कर
वे जो समझते हैं इन यन्त्रों को
अपनी इच्छाओं का दास मात्र
मैं केवल उनकी परीक्षा हूँ
प्रतीक्षा हूँ
मैं जानता हूँ शल्याघात के क्षणों में
मेरा भविष्य है और नहीं भी है
मैं अधीर हूँ अंतिम निर्णय के लिए ।

[३]

जब शामें गर्म होती हैं और सुबहें ठंडी,
जब दिन तपाता है और रक्त जमा देती है रात
जब एक मौसम से होने लगता है अकस्मात संक्रमण
किसी अन्य मौसम में, तब कोई वायरस अभिजात
घात में आ बैठता है हर गली मोड़ पर।
मेरी बीमारी है, हाँ, मेरी अपनी ही दुर्बलता
प्रतिरोध शक्ति की क्षीणता।
गिद्ध लाशें ही नोचते हैं।
जब ज्वर रेंगने लगता है कीड़ों की तरह जिस्म पर,
तब संत्रास की किस्म से मैं समझ जाता हूँ :
कौन सा है वह मौसम जो अब आ रहा है।
(सुना है कि मौसमों की पुरानी पहचान
आदिम क़बीलों में पनाह पा रही है
पेड़-पौधों-फूल-पत्तों के आँगन में
नंगी बैठी हुई)
मेरे मित्र, नग्नता पर कविताएँ लिख सकते हैं
भोग नहीं सकते, सब स्त्रीलिंगों-पुल्लिगों के
द्वारों पर भारत सुरक्षा का ताला जड़ दिया गया है
माहवारी खाते ये सारे दिवालिया हैं तुम्हारे
मैं मानसिक मैथुन में विश्वास नहीं करता।
शायद इसीलिए मेरा पौरुष रहता है उत्तेजित।
तुमने एण्टीबायोटिकों के नाम रट रखे हैं काफ़ी,
लेकिन मित्र, इन सबसे इम्युनिटी जो पा चुका है उसका
क्या होगा उपचार ? जाओ, और नयी शोध करो।
मुझे अगर चाहोगे गिनी पिग बनाना,
प्रस्तुत हूँ : सार्थक तो हो मेरी निरर्थकता।
निरर्थकता में जी रहे हैं कुत्ते दुम हिलाते, गुर्राते

अपने स्वामियों के चरणों पर, और हर राहगीर को
वफ़ादारी से डराते-धमकाते, गुर्राते और भौंकते,
मैं चौंका हुआ, शायद दिग्भ्रमित, एक राहगीर हूँ।
मैं अपने अन्दर देखता हूँ एक नक्शा और मैं
खोज रहा हूँ गंतव्य सड़कों की दुर्गम वर्ग पहेली में।
मुझे जो राह रुचती है उसको रोके क्यों खड़े हैं
सोने के चिकने पर्वत, खेद कि मैं रोमांटिक नहीं हूँ।
मेरा माथा गर्म है और शरीर काँपता है ज्वर से,
मैं एक निर्मम बम के पाजिटिव-निगेटिव तारों के
छोर लिये ठहरा हूँ बढ़ते हुए समय की प्रतीक्षा में।

•

शलभ श्रीराम सिंह

ज़िन्दाबाद इन्क़लाब

नफ़स-नफ़स ! क़दम-क़दम !
बस एक फ़िक्र दम-ब-दम !
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिये !
जवाब दर-सवाल है कि इन्क़लाब चाहिये !
इन्क़लाब ! ज़िन्दाबाद !
ज़िन्दाबाद ! इन्क़लाब !

जहाँ अवाम के ख़िलाफ़ साज़िशें हों शान से !
जहाँ पे बेगुनाह हाथ धो रहे हों जान से !
जहाँ पे लफ़्ज़ेअम्न एक खौफ़नाक़ राज़ हो !
जहाँ कबूतरों का सरपरस्त एक बाज़ हो !
वहाँ न चुप रहेंगे हम !
कहेंगे, हाँ ! कहेंगे हम !
हमारा हक़ ! हमारा हक़ ! हमें जनाब चाहिये !
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिये !
जवाब दर-सवाल है कि इन्क़लाब चाहिये !
इन्क़लाब ! ज़िन्दाबाद !
ज़िन्दाबाद ! इन्क़लाब !

यक़ीन आँख मूँद कर किया था जिनमें जान कर !
वही हमारी राह में खड़े हैं सीना तान कर !

उन्हीं की सरहदों में क़ैद हैं हमारी बोलियाँ !
वही हमारे थाल में परस रहे हैं गोलियाँ !
जो इनका भेद खोल दे
हरेक बात बोल दे
हमारे हाथ में वही खुली किताब चाहिये !
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिये !
जवाब दर-सवाल है कि इन्क़लाब चाहिये !
इन्क़लाब ! ज़िन्दाबाद !
ज़िन्दाबाद ! इन्क़लाब !

वतन के नाम पर खुशी से जो हुए हैं बे-वतन !
उन्ही की आह बे-असर, उन्हीं की लाश बे-क़फ़न !
लहू-पसीना बेचकर जो पेट तक न भर सकें !
करें तो क्या करें भला ? न जी सकें ! न मर सकें !
सियाह ज़िन्दगी के नाम
जिनकी हर सुबह व शाम
उनके आसमाँ को सुर्ख आफ़ताब चाहिये !
घिरे हैं हम सवाल में हमें जवाब चाहिये !
जवाब दर-सवाल है कि इन्क़लाब चाहिये !
इन्क़लाब ! ज़िन्दाबाद !
ज़िन्दाबाद ! इन्क़लाब !

होशियार ! कह रहा लहू के रंग का निशान !
ऐ किसान ! होशियार ! होशियार ! नवजवान !
होशियार ! दुश्मनों की दाल अब गले नहीं !
सफ़ेदपोश रहजनों की चाल अब चले नहीं !
जो इनका सर मरोड़ दे
ग़रूर इनका तोड़ दे

व' सरफ़रोश आरज़ू—वही शबाब चाहिये !
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिये !
जवाब दर-सवाल है कि इन्क़लाब चाहिये !
इन्क़लाब ! ज़िन्दाबाद !
ज़िन्दाबाद ! इन्क़लाब !

तसल्लियों के इतने साल बाद अपने हाल पर !
निगाह डाल, सोच और सोचकर सवाल कर !
किधर गये वो वायदे ? सुखों के ख़्वाब क्या हुए ?
तुझे था जिनका इन्तज़ार वो जवाब क्या हुए ?
तू इनकी झूठी बात पर
न और ऐतबार कर
कि तुझको साँस-साँस का सही हिसाब चाहिये !
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिये !
जवाब दर-सवाल है कि इन्क़लाब चाहिये !
इन्क़लाब ! ज़िन्दाबाद !
ज़िन्दाबाद ! इन्क़लाब !

१७ फ़रवरी, ६७

हर बरस की तरह

हर बरस की तरह
फिर इस साल : बन्द है
पीले लिफाफे में—
एक नन्हा गीत

एक मीठी याद
एक चुटकी रंग और गुलाल !
हर बरस की तरह फिर इस साल···!

व्रत--कि जिसमें लिखा है : आती नहीं है नींद
सारी रात !
दोपहर को
काम-धंधे से निपट कर
भाभियाँ सब घेर लेती हैं
और बरबस ही चलाती हैं तुम्हारी बात !
रात—सोते समय माँ ने भी कहा था : आ गई होली
न आई लड़िकऊ की अभी पाती
आज तक पाया नहीं कुछ हाल !
हर बरस की तरह फिर इस साल···!

कल मिली पारो लगी कहने कि जीजा जो नहीं आये ?
बावरी ! लिख दे उन्हें—छोड़ें कमाई
और फागुन बिता कर घर
जायें ! हो चुका इतना बहुत
हम सभी भर पाये !
आईने में देख जाकर शक्ल अपनी
आँख के नीचे सियाही जम गई है
हाय, पोले पड़ गए हैं गाल !
हर बरस की तरह फिर इस साल···!

सामने कनई-नहाये भोर की बस्ती उभर आयी !
थाप ढोलकी-मँजीरों की किलक—फाग की बेफ़िक्र स्वर लहरी
याद की तह में—बहुत नीचे···बहुत नीचे उतर आयी !

लाज में डूबी---रचाए माथ पर निचुड़ी गुलाबी पँखुरियों-सी शिकन हल्की
लता सोने की लजा कर हो गयी है लाल !
हर बरस की तरह फिर इस साल···!

ग्रीष्म-दोपहर

झोंके गर्म बतास के···
चले बगूले लेकर सिर पर
सहमे पात पलाश के···
झोंके गर्म बतास के···

हाँफ रही बरगद के नीचे बैठ दुपहरी गाँव की !
भरा सिवानों में सूनापन
सिड़क रही है धूप निगोड़ी बाँह पकड़ कर छाँव की !

साँस रोक चुपचाप पड़ी हैं नयी पत्तियाँ नीम की !
बहुत दिनों के बाद खुली हैं—
आज अचानक बूढ़ी आँखें शायद किसी हकीम की !

सूख गये तालाब---बगुलियाँ देती फिरें दुहाई
खूँटे बँधी धेनुएँ अक्सर
रात-रात, दिन-दिन देखा करती हैं सपने घास के !
झोंके गर्म बतास के···

१ जून, ६५

●

श्यामसुन्दर घोष

एक बीज का स्वगत-कथन

अब प्रतीक्षा नहीं
स्वल्प सी भी नहीं ।

युगों से रक्खा हुआ मैं
प्रतीक्षित हूँ ।

स्यात् कोई कभी आये
मुझे ले ले मुट्ठियों में
स्वेद-श्लथ नम हथेली की उष्णता का
स्पर्श देकर

वरण मेरा करे ।
किसी सम्यक् क्षेत्र
या भू-कुक्षि में
हल्के धरे, सिंचित करे
आशीष जल, सम्भावना के श्लोक से ।

रोज आतुर नयन देखे
भू-जननि तन्वंगिनी को ।
प्रतीक्षे

जिस प्रकार पिता पितामह
देखते अनुराग वेष्टित
गर्भधारिणी वधु सुकन्याओं को !

कुलबुलाऊँ मैं
कि ज्यो मात: उदर में
भ्रूण शिशु हल्के हिले
डोले, चले ।
प्राणद प्रकम्पन
पुलक प्रेरण से
हँसे रोमावली
रोमांचिता सिहरे
बुने सपने नयन में
स्नेह सुख सम्भावना के ।

आह ! ये शुभ स्वप्न
स्वर्णिम कल्पनाएँ, भावनाएँ
निरर्थक हैं
सम्भावना इनकी नहीं सच कभी होगो
नहीं आयेगा कभी कोई ।
वरेगा नहीं ।
मैं यों ही धरा रह जाऊँगा ।

खुले हाथों का समय चुक सा गया ।
तत्पर नहीं, कोई कहीं
कुछ भी अनिर्णित या अनिश्चित ग्रहण करने क. ।
सभी उपलब्धियाँ ही चाहते ।
सब मुट्ठियाँ बाँधे हुए रहते

भले कुछ भी न हो उनमें
मगर यह एक मुद्रा बहुत प्यारी है ।

हवा में हिलाते हैं इस तरह से हाथ
मानो लुटायेंगे कुछ बड़ा अनमोल ।

कौन चीन्हेगा मुझे
अपदार्थ यह अस्तित्व
जो श्रम शक्ति साधन साधना के योग से
सम्भाव्यता की भूमिका प्रस्तुत करेगा
कौन इस युग बीच ऐसा है
कि जो मुझको वरेगा ?

आह ! कैसा समय आया है !
सोचता जो भी गलत हो सोचता है !
इस तरह विकलांग, क्लीव निराश
से सब हो गये हैं ।

ओर मैं भी मुक्त इन सबसे कहाँ हूँ ?
यत्न करता हूँ कि कोई
आस्था का कण बचा रह जाय ।
जीवन की चरम आसक्तियों का
क्षण बचा रह जाय ।

लेकिन प्रतीक्षाएँ उबा देती हैं ।
नसों में दोड़ता सा रक्त
थक कर ठहर जाता है ।
शिराओं में अचीन्हे दर्द का
एहसास सा कुछ लहर जाता है ।

नज़र जिस ओर जाती है
सपाट, उजाड़, बंजर, शुष्क धरती
नज़र आती है।
बगूले इस तरह से हहर कर चलते
कि जैसे भूत-प्रेत हुजूम बाँधे
अनदिखे से दौड़ते हों—
रौंदते वातावरण को।

आह! बादल के सलोने दिन कहाँ हैं?
अंकुरित होने, उमगने, गुनगुनाने
के मधुर पल-छिन कहाँ है?

भटकते से मेघ-शिशुओं को
कहाँ किस गुहागह्वर में छिपा कर
रख दिया डायन हवा ने?
हाँफती सी भटकती फिर आ गई है
बियाबानों में।
कौन प्यासा दैत्य
बावड़ियों, कुँओं, तालों, तलैयों का अमृत जल
अतल तल तक पी गया है?

और गीली मिट्टियों पर
नाखूनों, बेडौल पैरों के
भयंकर चिह्न अंकित कर गया है?
हरिण-यूथें, नील गायें
दूर से ही देख कर
सहमती सी ठिठक जाती हैं।
पपड़ियाये होठ पर जिह्वा फिराती हैं।

आह! अब ये कहाँ जायेंगी?
कहाँ किस छाँह में पलभर जुड़ायेंगी?

नोच कर पत्ते सभी पीले हरे छतनार वृक्षों के
किसी ने चबा डाले हैं।
झाड़ियों, कुंजों, लताओं को
कुचल डाला है किसी दन्ताल ने
भारी पगों से, सुंड से।

खेत अब दैत्यों सरीखे हो गये हैं!
दरारें जबड़ों सरीखी।
अँधेरा साँपों सरीखा
कुंडली मारे जहाँ पर छुपा बैठा है।

अब धरा की त्वचा का वह सलोनापन,
सरसता, मृदुता कहाँ है?
देखकर श्री-हत उसे यह बोध होता
बहुत मोटा, बहुत भूरा,
बहुत मोटी खाल वाला
जंगली भैंसा कि गैंडा
पसर करके सो गया है।

या कि सब रस सोख करके
शाप देकर
किसी मायावी छली ने
धरित्री को
कठिनतम चट्टान में परिणत किया है।

हवाओं में तैरते हैं कटे पंजे ।
खोजते हैं
फूल, तितली, किसलयों के दल,
लताएँ, आम्र मंजरियाँ
कि जिनको मसल डालें ।

नहीं मिलते तो उतरते भू-सतह तक
उँगलियों को, नखों को आँखें बना कर ढूँढ़ते हैं—
एक अंकुर, एक पौधा
एक फुनगी, एक पत्ती ।

मिलेगा जो भी उसे ये
मसल डालेंगे ।
हहरकर खूब ऊपर तक उठेंगे
एक दूजे से मिलेंगे ।
तालियाँ देंगे, हँसेंगे ।

बचाओ, इनसे बचाओ ।
ये मुझे यदि देख लेंगे
तो तुरत बन्दी करेंगे ।

कटे पंजों का अँधेरा
बहुत दम घोटू भयंकर ।
ये किसी चट्टान-तल में
दबा डालेंगे ।

मुट्ठियों में बन्द कर लेंगे ।
पसीने में उबालेंगे ।

या कि तपते हुए रेगिस्तान में
मुझको उछालेंगे ।

इस तरह सम्भाव्यता को व्यर्थ करके
फेंक देंगे
किसी परती किसी परपट पर
जहाँ पर बीटों सरीखा
मैं पड़ा रह जाऊँगा ।

आह ! वह दिन जिन्दगी में
नहीं आये, नहीं आये ।

•

धूमिल

बीस साल बाद

बीस साल बाद
मेरे चेहरे में
वे आँखें वापस लौट आयी हैं
जिनसे मैंने पहली बार जंगल देखा है
हरे रंग का एक ठोस सैलाब जिसमें सभी पेड़ डूब गये हैं।
और जहाँ हर चेतावनी
खतरे की निकासी के बाद
एक हरी आँख बन कर रह गयी है।

बीस साल बाद
मैं अपने आपसे एक सवाल करता हूँ
जानवर बनने के लिये कितने सब्र की जरूरत होती है ?
और बिना किसी उत्तर के चुपचाप आगे बढ़ जाता हूँ।
क्योंकि आजकल मौसम का मिजाज यूँ है
कि खून में उड़ने वाली पत्तियों का पीछा करना
लगभग बेमानी है।

दोपहर हो चुकी है
हर तरफ़ ताले लटक रहे हैं
दीवारों पर चिपके गोली के छर्रों

और सड़कों पर बिखरे जूतों की भाषा में
एक दुर्घटना लिखी गयी है।
हवा में उड़ते हुए हिन्दुस्तान के नक़्शे पर
गाय ने गोबर कर दिया है।

मगर यह वक्त घबराये हुए लोगों की शर्म
आँकने का नहीं है
और न यह पूछने का—
कि सन्त और सिपाही में
देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कौन है ?
आह ! वापस लौट कर
छूटे हुए जूतों में पैर डालने का वक्त यह नहीं है
बीस साल बाद और इस दोपहर में
सुनसान गलियों से चोरों की तरह गुजरते हुए
अपने आप से सवाल करता हूँ—
क्या आजादी सिर्फ़ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है ?
और बिना किसी उत्तर के आगे बढ़ जाता हूँ
चुपचाप।

१९६७

अकाल-दर्शन

भूख कौन उपजाता है :
वह इरादा जो तरह देता है

या वह घृणा जो आँखों पर पट्टी बाँधकर
हमें घास की सट्टी में छोड़ आती है ?

उस चालाक आदमी ने मेरी बात का उत्तर
नहीं दिया।
उसने गलियों और सड़कों और घरों में
बाढ़ की तरह फैले हुए बच्चों की ओर इशारा किया
और हँसने लगा।

मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—
'बच्चे तो बेकारी के दिनों की बरकत हैं'
इससे वे भी सहमत हैं
जो हमारी हालत पर तरस खाकर, खाने के लिये
रसद देते हैं
उनका कहना है कि बच्चे
हमें बसंत बुनने में मदद देते हैं।

लेकिन यहीं वे भूलते हैं
दरअस्ल, पेड़ों पर बच्चे नहीं
हमारे अपराध फूलते हैं।

मगर उस चालाक आदमी ने मेरी किसी बात का उत्तर
नहीं दिया और हँसता रहा, हँसता रहा, हँसता रहा
फिर जल्दी से हाथ छुड़ाकर
'जनता के हित में' स्थानांतरित हो गया।

मैंने खुद को समझाया—यार !
उस जगह खाली हाथ जाने से इस तरह

क्यों झिझकते हो ?
क्या तुम्हें किसी का सामना करना है ?
तुम वहाँ कुआँ झाँकते आदमी की
सिर्फ़ पीठ देख सकते हो।

और सहसा मैंने पाया कि मैं खुद
अपने सवालों के सामने खड़ा हूँ और
उस मुहावरे को समझ गया हूँ
जो आज़ादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिट रही है न
मौसम बदल रहा है।
लोग बिलबिला रहे हैं, (पेड़ों को नंगा करते हुए)
पत्ते और छाल खा रहे हैं।
मर रहे हैं, दान कर रहे हैं।
जलसों-जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी से
हिस्सा ले रहे हैं और
अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं।

झुलसे हुए चेहरों पर कोई चेतावनी नहीं है।
मैंने जब भी उनसे कहा है देश, शासन और राशन···
उन्होंने मुझे टोक दिया है।
अक्सर, वे मुझे अपराध के असली मुकाम पर
अँगुली रखने से मना करते हैं
जिनका आधे से ज्यादा शरीर
भेड़ियों ने खा लिया है
वे इस जंगल की सराहना करते हैं—
'भारतवर्ष नदियों का देश है।'

बेशक, यह खयाल ही उनका हत्यारा है।
यह दूसरी बात है कि इस बार
उन्हें पानी ने मारा है।

मगर वे हैं कि असलियत नहीं समझते।
अनाज में छिपे 'उस आदमी' की नीयत
नहीं समझते
जो पूरे समुदाय से
अपना गिज़ा वसूल करता है—
कभी 'गाय' से
और कभी 'हाय' से।

'यह सब कैसे होता है' मैं उन्हें समझाता हूँ।

मैं उन्हें समझता हूँ—
वह कौन-सा प्रजातांत्रिक नुस्खा है
कि जिस उम्र में
मेरी माँ का चेहरा
झुर्रियों की झोली बन गया है
उसी उम्र की मेरे पड़ोस की महिला
के चेहरे पर
मेरी प्रेमिका के चेहरे-सा
लोच है।

वे चुपचाप सुनते हैं।
उनकी आँखों में विरक्ति है,
पछतावा है,
संकोच है,

या क्या है कुछ पता नहीं चलता।
वे इस कदर पस्त हैं :
कि तटस्थ हैं।

और मैं सोचने लगता हूँ कि इस देश में
एकता युद्ध की
और दया अकाल की पूँजी है।
क्रांति—
यहाँ के असंग लोगों के लिए
किसी अबोध बच्चे के—
हाथों की जूजी है।

रोटी और संसद

एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ़ रोटी खेलता है
मैं पूछता हूँ—
'यह तीसरा आदमी कौन है ?'
मेरे देश की संसद मौन है !

•

विजय बहादुर सिंह

मेरे देश को गालियाँ मत दो

मेरे देश को गालियाँ मत दो
मेरा देश एक कल्पना है
धरती के आँगन में
यह एक अल्पना है !
मेरा देश नदियों में बहता
और रितुओं में हँसता है
मेरा देश रोज रोज
दुर्भाग्य के दलदल में धँसता है !
मेरा देश नंगा है, गंगा है
मेरा देश मन की कठौती में चंगा है
मेरे देश को गालियाँ मत दो

आधी रात बीते मेरा देश
गालों पर हाथ धरे सोता है
सुबह उठता है
अपनी ही राहों पर
काँटे छिटकाता है, बोता है
चलता है फिर उन पर रोता है
टपक रहे अपने खून को
अपने ही पसीने से धोता है

मेरे देश को गालियाँ मत दो
मेरा देश सोने का बंगाल है
इसका हर गली-कूचा कंगाल है
मेरा देश आवाराओं का मुहल्ला है
इसमें सुबह शाम
शोहदे अखबारों का हो-हल्ला है
मुस्तंडे साधुओं और पेटू महाजनों का
पूरा इजारा है, पक्का धंधल्ला है
मेरे देश को गालियाँ मत दो

मेरा देश जवान है
बूढ़ा है ओछा है, और महान् है
इसकी आँखों में अनागत है
मस्तक पर अंकित श्मशान है
मेरा देश त्रैलोक्य का नेता है
कोरा विदूषक है, सड़ियल अभिनेता है
झुके हुए इसके कन्धों पर
सतयुग है, द्वापर है, त्रेता है
मेरे देश में मेरी, तुम्हारी
उनकी, सबकी आवाज है
मेरा देश भरा-पूरा है, आजाद है
मेरा देश विधि-निषेधों का राजा है
दकियानूसों का सरताज है
मेरे देश को गालियाँ मत दो

मेरा देश मेरा खून पीता है
मेरा देश मेरे लिए मरता है
मेरे लिए जीता है

मेरा देश शक्ति की रामायण है
मेरा देश कर्म की गीता है
मेरा देश इसीलिए
इतना गया-बीता है
मेरे देश को गालियाँ मत दो

मेरा देश बर्फीले मौसम में
सुबह शाम नहाता है
मेरा देश भूखा रह कर
पानी में पैसा बहाता है
मेरा देश गाल बजाता है, हाथ हिलाता है
मेरा देश अपनी ही रोटी छीनकर
हाहाकार मचाता है
मेरे देश को गालियाँ मत दो

मेरा देश अहिंसावादी है
मेरे देश में मरने-मारने की आजादी है
मेरा देश एक मौन आबादी है
मेरा देश बुझाओगे तो बुझ जायेगा
जलाओगे तो जल जायेगा
पुकारोगे तो हकलायेगा
सिर पर हाथ फेरोगे तो पूंछ हिलायेगा
मेरा देश स्वामिभक्त है
मेरा देश क्षुब्ध रक्त है
मेरे देश को गालियाँ मत दो

मेरा देश उनचास प्रभंजन खोले है
मेरा देश इन प्रभंजनों में विष घोले है

मेरा देश घटाओं से भी काला है
मेरा देश द्वादश मार्त्तण्डों का उजाला है
मेरा देश स्वाभिमानी है, भीख माँगता है
मेरा देश जगद्गुरू है सीख माँगता है
मेरा देश अजायबघर है मन बहलाता है
मेरा देश शेखचिल्ली है सपने सजाता है
मेरा देश एक कालिदास है डाल पर
मेरा देश मस्त है अपने हाल पर
इसे गालियाँ मत दो

रणजीत

पृष्ठभूमि

ज़र्द हैं चाँद का मायूस चेहरा
रह रह कर खाँस उठता है
दमें का मरीज़ बूढ़ा आसमान ।
अपना ग़म ग़लत कर रहे हैं सितारे
शराब की तल्ख घूंटों में ।
हवाओं के सर्द होठों पर
सिसकियाँ जम गयी हैं ।
भूख से कुलबुलाती हुई ओस की दुधमुँही बूंदें
अपने अस्तित्व की भीख माँग रही हैं ।

फुटपाथों पर ठिठुर रहा है बेघरबार सन्नाटा
बेरोज़गारी से तंग उजाला
रेल की पटरी पर कट कर मर गया है !

अपने कसमसाते हुए प्यार को पाबन्दियों के किनारों में जकड़े
करवटें बदल रही हैं
हिस्टीरिया से पीड़ित झीलें
पहाड़
अपने पौरुष की लाश पर पुराने संस्कारों की बर्फ़ का कफ़न डाले
मातम मना रहे हैं ।

अकेला चीख रहा है कुँवारी रात का अवैध बच्चा ।
बादलों की जवान बेटियाँ
जिस्म की दूकान कर रही हैं ।
पत्थरों को पूज रही हैं मासूम कलियाँ ।
फूलों को परेड-मैदानों में पंक्तिबद्ध करके
संगीनें भोंकने की दीक्षा दी जा रही है ।

हथकड़ियों से जकड़ी हुई हैं पेड़ों की शाखें
बेलों की साँसों पर पहरा लगा है ।
सुरक्षा अधिनियम में गिरफ्तार कर लिये गये हैं झरने ।
आँधियों के आन्दोलनों को
मशीनगरों से भूना जा रहा है ।
टीयरगैस से आक्रान्त हैं दिशाओं की आँखें
धरती का एक एक जोड़
दर्द रहा है ।
शायद कोई सबेरा
क्षितिज के गर्भ में छटपटा रहा है ।

१९५९

प्रतिश्रुति का गीत

मैं आज के युग में जी रहा हूँ
और आज की
—एकदम आज की—संक्रान्ति झेल रहा हूँ
पर मैं असंगतियों और विद्रूपताओं के,

विक्षेप और आत्महनन के गीत कैसे गाऊँ ?
जब कि मेरे आसपास सब कुछ अँधेरा ही नहीं है ।

तमाम दूरियों के बावजूद मेरे माता-पिता
अभी मेरे लिये बेगाने नहीं हुए हैं
अपने घर में मैं अभी आउटसाइडर नहीं हुआ हूँ
मेरी पत्नी अभी मेरे लिये अजनबी नहीं बनी है
मेरे दोस्त अभी मेरी भाषा समझते हैं !

यह नहीं कि मुझे कभी अकेलापन नहीं सताता
पर अधिकतर मैं जब भी चाहता हूँ
अपने अकेलेपन को
अपने साथियों के कन्धों पर टाँक सकता हूँ :
झोले में पड़ी एक पुस्तक की तरह
अपनी प्रिया की आँखों में विलीन सकता हूँ ।
स्वच्छ सरोवर में डुबकियाँ लगाते हुए
एक जलपक्षी की तरह
अपने विद्यार्थियों के चेहरों पर छिड़क सकता हूँ :
गर्मी की किसी दोपहर में
खस से सुगन्धित ठण्डे पानी की तरह
और अपनी किताबों के पन्नों पर बिखेर सकता हूँ :
गुलाब की ताजा पंखुरियों की तरह
या नयी खबरों के आकाश में उड़ा सकता हूँ :
एक नन्हें से सफ़ेद कबूतर की तरह !
और जब यह कुछ भी सम्भव न हो
तो किसी भी जाते हुए राहगीर के पल्ले से बाँध सकता हूँ, उसे :
रोटी और अचार की एक छोटी सी पोटली की तरह !

लोग मुझे सीली हुई दियासलाइयों से असहाय कैसे लगें ?
जब कि मैं उन्हें देखता हूँ :
लोगों के लिए लड़ते हुए
बिना टूटे जेलों में सड़ते हुए !
दुनिया मुझे सिफ़लिस से बजबजाई हुई
मवाद चुआती हुई
मुट्ठियों में अपनी मौत की विरासत बाँध कर जाती हुई
कैसे दिखाई दे ?
और क्यों लगें फुन्सियों की तरह आकाश के तारे
जब कि फुंसियों और बीमार मनों—
दोनों के ही लिये अस्पताल मौजूद हैं
मैं विक्षेप के विद्रूप और मृत्यु के संत्रास की कविताएँ कैसे लिखूं !

जब कि सब बातों के बावजूद
मेरी धरती अभी चमगादड़ों की दुर्गन्धित गुफाओं
और बारूद के ज़हरीले धुएँ से घुटे खंडहरों में नहीं बदली है
और न आकाश में मकड़ियों ने ही अपने जाले बनाये हैं ।
मेरी सभी हवाओं में अभी ज़हर नहीं घुला है
और न मेरी नदियाँ
बिलबिलाते हुए कीड़ों से भरी नाबदानों में ही बदली हैं ।
पागलखाने और चकले अभी मेरे नगरों में ही हैं,
मेरे नगर अभी पागलखानों और चकलों में नहीं गये हैं
लोग भूखों तो मरते हैं
पर अभी शमशान में ही ले जाकर जलाये जाते हैं
शमशान अभी घरों में नहीं उतरे हैं !
मनुष्यों और मनुष्यों के बीच अभी बहुत कुछ शेष है
फूल अभी खिलते हैं

पक्षी अभी चहचहाते हैं
मेरे आसपास अभी बहुत-सा उजाला है !

यह नहीं कि मैं अपने परिवेश की असंगतियों के प्रति अन्धा हूँ
या कि मैं उसकी विरूपताओं को देखना नहीं चाहता
नहीं, मैं उन्हें देखता हूँ
पर मैं सिर्फ़ उन्हें ही नहीं देखता
और न उनके गौरव-गायन में ही अपनी कविताओं को
लगाना चाहता हूँ
मैं उन विरूपताओं की लपटों के बीच
प्रह्लाद की तरह सिर उठाते हुए सौन्दर्य को भी देखता हूँ।
और उस संगति को भी
जो इन असंगतियों की काई फाड कर झाँक जाती है !
मै अपने चारों ओर फैली हुई संक्रांति से नहीं,
उसके बीच से अपने नक्श उभारती हुई क्रांति से प्रतिश्रुत हूँ !
अस्तित्व की बेहूदगियों के रेगिस्तान का नहीं
उसके नीचे बहती हुई सार्थकता की उस अन्त:सलिला का कवि हूँ
जो पाताल-तोड़ कुएँ के रूप में फूट पड़ना चाहती है।
मैं उसकी मुक्ति के लिये संकल्पित हूँ।

१९६७

क्रान्ति : एक भारी उद्योग

क्रान्ति एक भारी उद्योग है
विशाल निर्माण का भव्य अभियान

इसमें हजारों वैगन सीमेंट चाहिए
और लाखों टन लोहा
भारी मशीनें
और विदेशी नो-हाउ।
हिन्दूकुश के पार है हैड क्वार्टर
इसके एकाधिकारी मालिकों का
दुनियां के कोने-कोने में वे
क्रान्ति का निर्माण कार्य करवाते हैं
स्थानीय ठेकेदारों से
टेंडर आमंत्रित करके
क्रान्ति के नक्शे पास करते हैं खुद मालिक
सामग्री की गुणवत्ता का परीक्षण करते हैं
इंजीनियरों की विशेषज्ञता और ठेकेदारों की निष्ठा का
उनकी मदद के लिए अपने विशेषज्ञ भेजते हैं, समय-समय पर
और जो ठेकेदार उनके मनोनुकूल काम नहीं करवा पाता
उसे बदल देते हैं, बिना देर लगाए
ठेकेदार
इसी भारी निर्माण के लिए
काम पर लगाता है
सस्ते स्थानीय मज़दूर
मज़दूरी और बोनस
ग्रेचुइटी और पी० एफ०
मरणोपरान्त पेंशन
सब देता है
भरती के लिए
आस-पास की बस्तियों में भेजता है अपने प्रतिनिधि
जो आन्दोलन और प्रचार करते हैं
मज़दूरों से कहा जाता है :

खुद तुम्हारे लिए आवास-निर्माण का परोपकारी काम शुरू कर रहे हैं
साथी अमुक, अमुक
पहुँचे हुए क्रान्तिकारी हैं
सहायता कर रहे हैं साथी विदेशी विशेषज्ञ
उन्हें भेज रहे हैं क्रान्ति की राजधानी से
महामहिम साथी जनरल सेक्रेट्री
अपने वैश्विक कर्त्तव्य बोध से प्रेरित होकर।
आइये
और अपने आत्मोद्धार के इस पुनीत अभियान में शामिल हो जाइये
अपने सपनों का देश बनाइये
इस महान ऐतिहासिक कार्य में अपना जीवन लगाइये
इसके लिए त्याग और बलिदान से उसे सार्थक बनाइये !
एकत्र हो जाते हैं न्यूनतम मजदूरी पर
ढेर के ढेर क्रान्ति के सैनिक
अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर
क्योंकि अदम्य है क्रान्ति का आह्वान
शताब्दियों से सोया हुआ रहता है
यह शब्द उनके रक्त की गहराइयों में
पर इस थका देने वाले भारी निर्माण के दौरान
कई बार इन आदर्शवादी सैनिकों का भी धैर्य छूट जाता है
और उन्हें यह आभास हो जाता है
कि जिस भव्य-भवन का निर्माण हम
विदेशी विशेषज्ञों के निर्देशन में कर रहे हैं
वह हमारे रहने के कभी काम नहीं आ सकता
क्योंकि उसकी पूरी रचना
विदेश में स्थित क्रान्ति की राजधानी में बैठे हुए
महामहिम नेताओं की जरूरतों के अनुसार हो रही है
तब वे भड़क उठते हैं

काम छोड़कर भाग जाना चाहते हैं
या ज्यादा हिस्सेदारी माँगते हैं निर्णय में
तब ठेकेदारों को
मालिकों के परामर्श से
क्रान्तिकारी अनुशासन की स्थापना करनी पड़ती है
आखिर इस महान ऐतिहासिक कार्य में लगे हुए श्रमिकों को
क्रान्ति के स्रष्टाओं को
यों ही छुट्टे तो नहीं छोड़ा जा सकता
कि वे अपनी धुन में चाहे जिधर निकल जायँ
और दुश्मन के द्वारा इस्तेमाल किये जायँ !
ऐसी असाधारण स्थिति में
स्थानीय ठेकेदार
बुला लेते हैं हैड क्वार्टर से पुलिस और फ़ौज
और अगर वे नू-नच करते हैं
तो हैड क्वार्टर खुद ही भेज देता उनकी इच्छा के विरुद्ध
जो विद्रोह को दबाती है
क्रान्ति की अब तक की उपलब्धियों को बचाती है
और बचे हुए विद्रोहियों को श्रम-शिविरों में संयोजित करके
फिर काम पर लगाती है।
बड़ा कठिन और उलझा हुआ होता है
क्रान्ति का निर्माण कार्य
उसमें वैगनों मांस लगता है
और टनों लहू।

दिसम्बर १९८१

•

जुगमंदिर तायल

लावा

कितने दिनों से
गरम लावा धरती की दरारों के भीतर
भटक रहा है

इन दिनों
लावे की एक परत
बाहर फूट आयी है
और उसे रास्ता देने के लिए
सड़क खाली हो गई हैं
बाजारों ने आंख बन्द कर ली है
सीमेण्ट की दीवारों ने जगह छोड़ दी है
लोहे के मजबूत खम्भे कांप उठे हैं
लावे का कर्कश शोर सुनकर
संगीत रुक गया है
पारदर्शी शीशे दरक गये हैं
रंगीन शब्दों से भरे पोस्टर उतर गये हैं
गलियाँ अजीब स्वरों में भर गयी हैं

वे लोग
ऊँची गद्देदार कुर्सियों पर बैठते हैं

और कांच की खिड़कियों से दुनिया देखते हैं
उन्होंने कह दिया है
यह महज कानून और व्यवस्था की समस्या है
लाठी के चन्द मजबूत हाथ
आंसू-गैस के थोड़े से गोलें
लोहे की नाली से निकली शीशे की चन्द गोलियाँ
सब ठीक कर देंगी
और उन्होंने खिड़कियों पर मोटे परदे गिरा लिए हैं

लावे की आग बढ़ती जा रही है
वृक्ष और फूल
पानी से भरे फव्वारे
संगीत और साहित्य के प्रसारण-केन्द्र
उसकी आँग में सुलग उठे हैं

उन्हें इस सबकी चिन्ता नहीं है
फव्वारें वे फिर से बना लेंगे
संगीत और फूलों के बिना काम चला लेंगे
ये जरूरी चीजें बिल्कुल नहीं हैं
और लावे की आग थोड़ी देर में
अपने आप बुझ जायेगी

पर कल क्या होगा ?
लावा तो और भी है
जो धरती की दरारों के भीतर
भटक रहा है
या कि बाहर आने को कसमसा रहा है

मदन डागा

कुर्सी प्रधान देश

पहले लोग सठिया जाते थे
अब कुर्सिया जाते हैं
दोस्त मेरे !
भारत एक कृषि प्रधान नहीं
कुर्सी प्रधान देश है !

हमारे संसद भवन के द्वार में
कुछ स्प्रिंगें ही ऐसी लगी हैं
कि समाजवादी सेठों की कार देखते ही
वह अपने आप खुल जाता है
और हम ग़रीबों को देख
चट बन्द हो जाता है
दोस्त मेरे ! तुम्हारा और मेरा ही नहीं
कार और द्वार का भी एक अंतर-आत्मो नाता है ।
उधर, पार्लियामेन्ट की नाक-नीचे
तम्बुओं में लगने वाले स्कूलों में
जो बच्चे मिमिया रहे हैं
वे देश का भविष्य बना रहे हैं ।
नौजवानों को बूढ़ा कर देने वाले
ये विश्वविद्यालय

जो कभी बुद्धिजीवी तैयार करते थे
अब, स्पंजनुमा डिग्रीजीवी बना रहे हैं
जो बीज की तरह
न गल सकते हैं, न फल सकते हैं
मात्र पानी उगल सकते हैं
वह, जो इन्होंने सीखा था
जैसा का तैसा
दुनिया में माई बाप इनका है पैसा
तभी तो
अब द्रोणाचार्य अँगूठा नहीं
चैक कटाते हैं
खतरा होने पर ही कैश मँगाते हैं

उधर दफ्तरों में
कुछ हवा ही ऐसी चल रही है
कि बिना पेपरवेट रक्खे
कागज तो कागज
फाइलें तक उड़ जाती हैं
पर, ओफिशियल वेइंग मशीनों में
सिक्के डालते ही, फौरन निकल आती हैं ।

श्याम धन को पाकर
गोपियाँ जितनी खुशी होती थीं
उससे ज्यादा तो आज
सफेद टोपियाँ खुश हो रही हैं ।
दोस्त मेरे ।
भक्तिकाल कभी खत्म नहीं होता
उसकी तो मात्र पुनरावृत्ति होती है ।
प्रेम करने की, एक उम्र होती होगी

चापलूसी करने की
कोई उम्र नहीं होती है।

तभी देखो ना
अपने बेटे की नौकरी की खातिर
पुजारी एम० पी० क्वार्टर्स में प्रसाद चढ़ा रहे हैं
और मल्ला जी मस्जिद में नहीं
मिनिस्टर के बगले पर दुआ माँग रहे हैं।
और हंस जो कभी मोती चुगते थे
या भूखे मर जाते थे
चाँदी की गोल गोल चवन्नियां चुगने लगे हैं

शायद चवन्नी सदस्यता
जीने का जरूरी साधन बन गई है
और उधर कुछ क्रांतिकारी
हँसिये पर से हथौड़ा हटाकर
चमचा रख रहे हैं
और हम सब
समाजवादी स्वाद चख रहे हैं !

•

कृष्णमुरारी पहारिया

पथावरोधी शिला

हम तोड़ सकते हैं पथावरोधी शिला
स्वयं टूटते रहने का संकल्प लेकर ही।
शिला पर बजते हर प्रहार के साथ
जहाँ टूटता है उसका मात्र एक अंश,
हमारी रगें, हमारे स्नायु, हमारे रक्ताणु—
हमारा सारा अस्तित्व भी टूटता रहता है
भीतर ही भीतर अदृश्य विघटन प्रक्रिया में
जो होती है व्यक्त
श्रम की क्लान्ति के रूप में।

संभवत: टूट जाएगी पीढ़ी की पीढ़ी
नामहीन
छोड़कर शिला पर अपने प्रयासों की
अपरिचेय छाप
फिर कोई एक व्यक्ति
इस जर्जर शिला पर करके पहला ही प्रहार
हो सकेगा समर्थ—
उद्घाटित करने में एक नई दिशा,
धारण करने में महापुरुषत्व का श्रेय,
हो सकने में एक विश्रुत इतिहास।

चलो हम बेईमान इतिहास को अनदेखाकर
नामहीन टूटन को सौंपकर अपना अस्तित्व
करते रहें प्रहार
उस बेशर्म शिला पर
जो अड़ी हुई है बनकर व्यवस्था
हमारे अनन्त-सम्भव विकास की यात्रा में
अनावश्यक पथावरोध की तरह।

छाया

जब जब मैंने
पास के वृक्ष की
छाया में
करना चाहा विश्राम,
उसने झुका कर—
डालों जैसी गरदन,
निकाल कर—
पत्तों जैसी जीभ
कर दिया शुरू
चाटना मेरा लाल गाढ़ा रक्त
मेरी गहरी नींद के बीच

इसीलिए मैं अब
धरती के इन
खोटे वंशजों से बचकर—

बचाकर
चलने लगा हूँ बीच सड़क

दुपहर—
चाहे जैसी खरी हो

केन-गीत

भीतर कहीं हिलोरें लेता,
निर्मल पानी केन का ॥
छन्द तैरता जिसके तल पर,
जैसे गुच्छा फेन का ॥
चपल मछरियाँ मथे डालतीं, भीतर उठती पीर है
मंथर गति से धारा बहती, नदिया कुछ गंभीर है
चट्टानी जबड़ों जैसे तट, और बीच में खाइयाँ
जितना विष पीती बस्ती का, नीलाती गहराइयाँ
आभारी मैं, और गीत भी,
इस अनहोनी देन का ॥

किरणें पीकर खिलखिल करती, फिर क्रीड़ा को टेरती
कुछ ऐसी बंकिम चितवन से, यह योगी को हेरती
खिचा चला जाता हूँ जैसे, बिन दामों का दास हो
या फिर पिंजरे के पंछी को, मिला खुला आकाश हो
बिना तुम्हारे कैसे सधता,
तप ओ प्यारी मेनका।

●

मृत्युंजय उपाध्याय

व्यवस्था

रात।
पेट पर रख हाथ
गिन रहा तारे
यह यशस्वी देश।
सम्मुख खड़ी दर्पण के
व्यवस्था बेशरम
सुलझा रही है केश।

•

लीलाधर जगूड़ी

बलदेव खटिक

रात; चिथड़ा खाती गाय के जबड़े में
धीरे-धीरे गायब हो रही थी
यह उसका अन्तिम छोर था
जिस पर एक बटन चमक रहा था

तभी हमारे गाँव के आकाश में
अचानक लोगों ने एक दरार देखी
सड़क से गाँव पर रोशनी फेंकती
यह पुलिस की गाड़ी थी

लेकिन यह इतना पैना उजाला नहीं था
कि अँधेरे के भीतर दुबके अँधेरे में
कुछ आँखें, कुछ हाथ, कुछ पाँव चमक उठे

वे भड़भड़ाकर उतरे
और रँगतू के घर की ओर दौड़े
उनकी दुरुस्त और निर्विघ्न दौड़ बताती थी
कि हमारे गाँव की चाल खराब हो गयी है
उनकी पोशाक
हमारे गाँव के कुत्तों तक के लिए
अपरिचित थी

जिसके चिथड़े न पहने हुए हों
हमारे गाँव के कुत्ते उसे फाड़ डालेंगे
वे गाँव की गरीब जनता के कुत्ते हैं
सभ्य और अजनबी पोशाकों के दुश्मन
लेकिन चार जोड़ी
पुलिस के बूटों में
उन्हें बैल के चमड़े की गन्ध नहीं आ रही थी
उनके पुलिस पैर
एक लाइन में
जैसे जलओद उछल रहे थे

क्योंकि ऐसे मौके पर
जो जिसके पास है
उसका उपयोग जरूरी हो जाता है
इसलिये कुत्ते भौंक रहे थे

जो रँगतू
कल राशन लूटने में शरीक था
उनके पास उसके नाम का वारण्ट
उसके परिवार ने रात भरपेट खाया है
भूख भर अन्न के नशे में
अपने देश का एक मामूली घर भी
आरामगाह बना हुआ है
(वैसे उसे घर कहना भी
खामोखा जिन्हें घर कहते हैं
उनकी बढ़िया छतों पर घास उगा देना है)
करीब-करीब अपनी इच्छाओं की मुट्ठी खोलकर
इस समय तक वे सोये हुए हैं

अपनी लात में ताकत पैदा करके
उन्होंने उसे बूट से उठाया
और तुरन्त उसके हाथ बाँध दिये
(वे हाथ जो बड़ी-बड़ी इमारतों पर
पलस्तर की तरह चिपके हुए हैं)
फिर थोड़ा बचे हुए अनाज के साथ
उसे शहर ले गये
जहाँ आदमी के लिए
जेल और पोस्टमार्टम की पूरी व्यवस्था है

पुलिसवालों पर आदमियों की आँखें थीं
इसलिए रँगतू की नंगी औरत
बाहर नहीं आ सकी
लेकिन भीतर
बच्चे उसके शरीर से पहनावे की तरह चिपके हुए थे

यह सुबह थी
गाड़ी के इंजन पर थरथराती हुई
अँधेरे के भीतर दुबके हुए अँधेरे में
बीबी-बच्चों के लिए लड़ता हुआ रँगतू
पहली बार गाड़ी पर 'फ्री' चढ़ रहा था

यह एक ऐसा वक्त था
जब वनस्पति
केवल घी के डिब्बे का मतलब था
और कहीं भी कोई शब्द अपनी क्रीज में नहीं था

शब्द जो कि दाल और भात हैं
शब्द जो कि रोटी और साग हैं

नहीं-नहीं; शब्द इतनी बड़ी चीज नहीं हैं
शब्द केवल रोटी पर रखे हुए नमक के कण हैं
शब्द जो लार बनाते हैं
इस वक्त कहाँ से लाये जायें ऐसे शब्द
जो हलफ़नामा बन सकें
जो तरफदारी कर सकें

पुलिस की गाड़ी में उसकी शब्दहीन आत्मा
एक नंगे पेड़ की तरह है
जिस पर थाने पहुँचने से पहले
कई हजार घमौरियाँ फूट पड़ेंगी
कई हजार लाल घमौरियों में बन्द पत्ते
निशान की तरह बाहर उभर आयेंगे
भाषा अचानक सारे शरीर में फल पड़ेगी
और कई हजार जीभों से बोलता हुआ
वह बरी हो जायेगा

अपनी ज़ड़ों के सहारे
अपनी मिट्टी में उतरा हुआ रँगतू
न पेड़ है। न पत्ता है। न हवा है।
अँधेरे के भीतर दुबका हुआ अँधेरे का कीड़ा भी नहीं
शब्द भी नहीं
रँगतू एक अकेले आदमी का दर्द है
और अकेला आदमी अपराधी होता है
सवालों के जत्थों से भरा हुआ अकेला आदमी
एक दुर्घटना होता है

थाने पहुँचते ही

गाड़ी से उतरते हुए रँगतू ने
थोड़ी देर के लिए खुद को बड़ा आदमी महसूस किया
ड्राइवर ने गाड़ी का डाला खोला
और वह सिपाहियों की ही तरह कूदता हुआ
जमीन पर खड़ा हो गया

तभी एक सिपाही को (जो रास्ते भर बीड़ी पीता रहा)
घर से आया हुआ तार दिया गया
तार पर उसकी माँ बीमार थी
लेकिन उसे शाम तक छुट्टी नहीं मिली

पक्का 'जेल आडर' बनवाने तक
वह रँगतू को, रस्सा पकड़े हुए
एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाता रहा
तीन गिलास चाय
और बावन पैसे की बीड़ी के धोरे पहुँचने के बाद
जिस समय झण्डा उतरने का गजर बज रहा था
उस समय रँगतू को कम्बल, कोठरी और नम्बर मिल रहा था
(लेकिन सिपाही की माँ
जेब में मुड़े हुए तार पर छटपटा रही थी)

जब तीसरे दिन छुट्टी पर
वह अपने गाँव पहुँचा तो उसकी माँ
सुई की नोक पर
अभी झड़ पड़ने वाली
पानी की बूँद की तरह इन्तजार कर रही थी

वह भागा-भागा जिला अस्पताल गया
एम्बुलेंस माँगी

भाँग के पौधों के बीच जो खराब खड़ी थी
धतूरा जिसके इंजन से बड़ा हो गया था

कई पुरानी लाशों को लाँघते हुए
उसने चारों ओर अपना दिमाग दौड़ाया
और जब बड़ी मुश्किल से एक विचार
उसकी पकड़ में आया
तो वह लपक कर पास ही थाने में गया

क्योंकि आजकल केवल आदमी होना
न्यायसंगत नहीं है
इसलिए उसने बताया कि मैं भी पुलिस विभाग का
आदमी हूँ
माँ को अस्पताल लाने के लिए
थोड़ा पुलिसगाड़ी दे दीजिए

उन्होंने कहा
पुलिस की गाड़ी अपराधियों को पकड़ने के लिये है
घर पर मरो या अस्पताल में मरो
सड़क पर मरो या श्मशानघाट पर पहुँचकर मरो
मरना कहीं भी अपराध नहीं है
और फिर तुम्हारी माँ का
हमारे पास कोई वारण्ट नहीं जो हम गाड़ी भेज दें
आखिर मरने वाले को कौन पकड़ सकता है
अक्सर हमारे पकड़े हुए भी मर जाते हैं

जब शाम को एक दवा की शीशी और कुछ गोलियाँ लेकर
वह घर आया

तो उसने अपनी माँ को मरा हुआ पाया
संसार से यह फरारी किस अपराध से बचाती है ?

अभावों की इस आज़ाद कहानी में
क्या इसी तरह होती है मुक्ति ?

आखिर बढ़ाई हुई छुट्टियों में
जब उसने अपनी माँ को स्वर्ग पहुँचा दिया
तब वह फिर थाना बिजनौर में लौट आया

वह विरक्त होना चाहता था
लेकिन अपना भविष्य उसे
भीतर-ही-भीतर ठग रहा था
कर्मकाण्ड की सारी कमजोरी को ढँकता हुआ
उसका उस्तरा फिरा सिर
किसी फिल्मी गुण्डे का सिर लग रहा था

फिल्मी वालों को जब गुण्डे और हत्यारे
दिखाने होते हैं
तो वे अभिनेता पर आम आदमी का मेकप कर देते हैं
बात दूसरी ओर चली जायेगी
क्योंकि इस बात को कान और जुबान की तलाश है
इसलिए मैं आपको
फिर से थाना बिजनौर ले चलता हूँ
जहाँ अपना घुटा हुआ सिर लेकर
वह सिपाही इस समय सन्तरी ड्यूटी पर है

उसकी छाती पर गोलियों का पट्टा है
उसके हाथ में एक बन्दूक है

उसे नहीं मालूम वह किसकी रक्षा कर रहा है
(मेरी समझ से वह केवल टहल रहा है)

क्या वह संसार की अपराध से रक्षा कर रहा है ?
क्या वह इस देश को बिगड़ने से बचा रहा है ?
भीतर एक कमरे में
अपने गन्दे लेकिन वरिष्ठ दाँतों को लेकर
दीवान बैठा है
रोजनामचे पर हाथ रखे हुए
जैसे वह शहर की पीठ हो

एक मार खाया हुआ आदमी चिचियाता है
मेरा बटुआ छिन गया
उसमें मेरी लड़की का फोटो भी था
वे उससे बलात्कार करेंगे
वे उसे मार डालेंगे
देखिए मुझे कितनी चोटें आयी हैं
मेरा दर्द—दर्ज करो
इस मटीले कागज पर मेरा दर्द—दर्ज करो
अपने होठों पर मुर्दा दिन को जिन्दा करते हुए
दीवान कहता है
किस कलम से करूँ ?
चाँदी की कलम से करूँ ? सोने की कलम से करूँ
कि लकड़ी की कलम से करूँ ?

मार खाया हुआ आदमी रिरियाता है
कि कानून की कलम से करो

कानून की कलम लकड़ी की होती है
दीवान कहता है—कल आना
मगर अपना गवाह भी साथ लाना
और किसी डाक्टर से यह भी लिखवा लाना
कि तुमने मार खायी-ही-खायी है···

बाहर सन्तरी-ड्यूटी पर खड़ा बलदेव खटिक
जिसका सिर मुड़ा हुआ है
जिसकी माँ बिना दवाई के मर गई थी
सब सुन रहा है
(थाने की बड़ी घड़ी सुधार कर
घड़ी साज़ फाटक से बाहर जा रहा है)
अचानक सामने खड़े नीम के पेड़ पर
उतरते शाम के कौवों से बलदेव खटिक कहता है
—'थ्थम'
मगर वे नहीं रुकते
वह धड़ाधड़ फायर करता है
बन्दूक के बट को थाने की दीवार से मारकर
तोड़ देता है
और सीढ़ियाँ उतर कर
सड़क पर मरे हुए कौवों को लाँघकर
भरार हो जाता है

(थाने की बगल में उस समय सिनेमाघर के भीतर
पर्दे पर एक ऐक्टर प्यार कर रहा था)

अब तक वह सन्तरी था
अब वह बलदेव खटिक है

'माँ की चूत इस नौकरी की' कहकर वह
माँ, माँ, माँ चिल्लाता हुआ
सीधा हमारे गाँव में घुस आया

उसके सिर पर टोपी नहीं है
कमीज़ हाफपैन्ट से बाहर आ गयी है
वह हरेक औरत से पूछता है तुमको क्या बीमारी है ?
अस्पताल तक पैदल चलो । गाड़ी खराब है

बच्चों से कहता है, लाओ मेरी लकड़ी का कलम
मैं फैसला लिख दूँ

किसी की बीमारी सुने बगैर
किसी के पास एक क्षण रुके बगैर
किसी को कोई फैसला दिये बगैर
वह दौड़ता हुआ आया
और रँगतू की झोपड़ी में
बेहोश होकर गिर पड़ा
(झोपड़ी का दरवाजा खुला हुआ था
रंगतू राशन वाले मामले में जेल चला गया था।
और उसकी औरत भी बच्चों समेत
वहाँ नहीं थी
मगर किसी ने भी उन्हें कहीं जाते नहीं देखा था
भीतर से नींद में पूँछ झुकाये हुए
एक कुत्ता निकला और अगली गली में मुड़ गया)

सुबह होने वाली है
लेकिन रात अब भी मौजूद है

रात उस वक्त भी मौजूद रहेगी
जब लोग दोपहर को ढलते हुए देख रहे होंगे

हर घर को अपने दर्द में लपेटती
दरवाजों की सन्धों को थोड़ा और चौड़ा करती हुई
रात ब्याने वाली है
चिड़ियों और कौवों और कुत्तों के सामूहिक शोर में
पत्तियाँ थरथराने वाली हैं···

तभी हमारे गाँव के आकाश में
अचानक लोगों ने एक दरार देखी
सड़क से रोशनी फेंकती हुई
फिर यह पुलिस की गाड़ी थी

राख की तरह झरती सुबह में
चमकती हुई कुत्तों की भौंक के बीच
बीड़ी पीते हुए वे उतरे
सम्बन्धों की वीरानगी में
उनके साधारण चेहरों पर
घरेलू थपेड़ों की गहरी शिनाख्त है
टट्टी फिरते हुए बच्चे हैं । फोड़े हैं
चूल्हे पर चढ़ा हुआ खदबदाता पानी है
भात के भपारे हैं

ने उतरे और रंगतू की झोपड़ी से
उस पागल सिपाही को बाँधकर ले गये
पहले उन्होंने उसके सरकारी कपड़े उतारे
क्योंकि सरकार पागल नहीं होती···
सरकार अपराधी नहीं होती

यह अलग बात है कि हथकड़ी और सज़ा
इन दोनों में से
आम आदमी के लिए सरकार क्या होती है

उन्होंने भी उसे हथकड़ी पहना दी
और आम आदमी में तब्दील कर दिया

वह अपने ही गाल पर चाँटे मार रहा है
उसके पास न कोई सहमति है और न कोई इन्कार
धरती को पीटते हुए
वह अपने ही पैर तोड़ रहा है

फिर भी उसके पागल सिर पर
बाल
आधा इंच बड़े हो गये हैं
उसके लम्बे नाखून संसार की धूल से
गन्दे हो रहे हैं
उसके हाथों में अब भी एक आदमी की ताकत
मौजूद है
लेकिन उसे अपने दुश्मन की सही पहचान नहीं है
और उसने गोलियाँ सही जगह नहीं दागी हैं

अब वह एक कोठरी में बन्द है
और उससे बयालीस नम्बर जूनियर
बाहर एक सन्तरी है
एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक टहलता हुआ
चेहरे से ज्यादा जिसके बूट में चमक है
अपनी मुस्तैदी में

जिसका समूचा शरीर
अनुशासन की रग है

उसकी छाती पर भी
गोलियों का एक पट्टा है
सिर पर टोपी है और हाथ में बन्दूक है
मगर यह पहलेवाले सिपाही से कहाँ पर अलग है ?

यह भी अपने देश को
न कहीं पर पाता है
न कहीं पर खोता है
उससे कहा गया है कि हरेक पर शक करो
विश्वास केवल दीवान का करो—दरोगा का करो
(उसका निजी कोई विश्वास नहीं)
अब देखना यह है कि
ये कब पागल होता है !

एक अच्छा खासा
काम करता हुआ आदमी
पागल हो जाये
१९७४ की राजनीति में
इसके लिए कोई शब्द नहीं
मैं आपको यकीन दिलाता हूँ
बलदेव खटिक के खानदान में
कोई पागल नहीं था

आप लोग अपनी परवाह करें
अपने बच्चों की जाँच करवायें

यह केवल अफवाह नहीं
(बल्कि जिन्दा होने की नयी शर्त है ?
कि देश में कुछ लोग
पेट से ही पागल होकर आ रहे हैं

लेकिन वे जब फायर करेंगे
तो यह तय है कि
इस बार कौवे नहीं मरेंगे ।

•

चन्द्रकान्त देवताले

पेड़

सड़कों के हाशिए
या मकान के अहातों में खड़े पेड़
अक्सर बेहद शालीन-आज्ञाकारी
और कभी-कभी बेहद पालतू नज़र आते हैं

मनुष्य का स्पर्श
उन्हें पेड़ होने की गरिमा से
थोड़ा दूर खिसका देता है
जबकि दरख्त आदमियों के बीच होकर
उन्हें थोड़ा आदमीपन के नज़दीक
लाने की कोशिश करते हैं

पेड़ों का हरापन मनुष्यों की
भूरी-भूरसट दुनिया में
निचाटपन के विरुद्ध
पानी की हलचल है
पानी के हाथों की तरह
पेड़ों की टहनियाँ
लगातार हिलती हैं
और पत्तियों की स्निग्ध भाषा

आदमी की आँखों को
बंजर होने से रोकती है

पर आदमी पेड़ों की पसलियों
तक से वसूल करता है
और काठ की दो-तीन चिड़ियाँ
सफ़ेद दीवार पर ठोक देता है
जबकि पेड़ चिड़ियाओं को
निरन्तर अपने कन्धों पर
बिठलाते हैं
ताकि आदमियों के
बच्चों की दिलचस्पी का दरवाजा
खड़कता रहे
और दूध के दाँतों के टूटने से पहले ही
उनके कान
संगीत के लिए बहरें नहीं हो जायें

पर पेड़ पहाड़ों पर
बबर शेर की तरह
शान से खड़े रहते हैं
और आदमी की मौजूदगी
उन्हें और भी पेड़ बनाती है

फिर भी आदमी बौना नहीं लगे
इसलिए पेड़ अपनी टहनियों को झुका देते हैं
और बच्चों को फल
स्त्रियों को फूल
और चाहने पर प्रेम के लिए

छाँह के अलावा
थोड़ी-सी आड़ भी देते हैं।

थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे

थोड़े से बच्चों के लिए
एक बग़ीचा है
उनके पाँव दूब पर दौड़ रहे हैं

असंख्य बच्चों के लिए
कीचड़-धूल और गन्दगी से पटी
गलियाँ हैं जिनमें वे
अपना भविष्य बीन रहे हैं

एक मेज है
सिर्फ़ छः बच्चों के लिए
और उनके सामने
उतने ही अण्डे और उतने ही सेब हैं

एक कटोरदान है सौ बच्चों के लिए
और हज़ारों बच्चे
एक हाथ में रखी आधी रोटी को
दूसरे से तोड़ रहे हैं

सिर्फ़ कुछ बच्चों के लिए
एक आकर्षक स्कूल
और प्रसन्न पोशाकें हैं

बाकी बच्चों का हुजूम
टपरों के नसीब में उलझ गया है
उनकी फटी चड्डी
उन्हें सीधा खड़े होने से रोक रही है

ढेर सारे बच्चे
सार्वजनिक दीवारों पर गालियाँ लिख रहे हैं
ढेर सारे बच्चे बीड़ी के अद्धे ढूंढ़ रहे हैं
ढेर सारे बच्चे होटलों में

कप-बसियाँ रगड़ रहे हैं
उनके चेहरे मेमनों की तरह दयनीय हैं
और उनके हाथों और पाँवों की चमड़ी
हाथ और पाँव का साथ छोड़ रही है

अखबार के चेहरे पर जिस वक़्त
तीन बच्चे आइस्क्रीम खाते
हँस रहे हैं

उसी वक़्त
बीस पैसे में सामान ढोने के लिए
लुका-छिपी करते बच्चों के पुट्ठों पर
पुलिस वालों की बेतें उमच रही हैं

ईश्वर होता तो इतनी देर में उसकी देह कोढ़ से
गलने लगती। सत्य होता तो वह अपनी न्यायाधीश
की कुर्सी से उतर जलती सलाखें आँखों में
खुपस लेता। सुन्दर होता तो वह अपने चेहरे
पर तेजाब पोत अंधे कुएँ में कूद गया होता। लेकिन···

यहाँ दृश्य में
सिर्फ कुछ छपे हुए शब्द हैं
चापलूसी की नाँद में
लपलपाती जुबानें
और मस्तिष्क में काले गणित का
पैबन्द है

सख्त चेहरे हैं
चौराहों पर तने हुए
पत्थरों पर खुदे हुए
सुभाषित वाक्य हैं

और पाँच बच्चे तबला
बजा रहे हैं
दो बच्चे
सितार सीख रहे हैं
एक बच्ची
कत्थक में थिरक रही है

और
ढेर सारी बच्चियाँ
गोबर-लीद ढूँढ़ते रहने के बाद
अँधेरे में
दुबक रही हैं।
कुछ लड़कियाँ नदी-तालाब-कुआँ
घासलेट-माचिस-फन्दा
ढूँढ़ रही हैं

और इसी वक़्त
एक लड़की चेहरे की कोमलता की बाबत
रेडियो से नुस्खा बता रही है

और असंख्य बच्चे
अँधेरे के बोगदे की तरफ
दौड़ते जा रहे हैं

उनकी स्मृतियों में फिलवक़्त
चीख और रुदन
और गिड़गिड़ाट की हिंसा है

उनकी आँखों में
कल की छीना झपटी और भागमभाग का
पैबन्द इतिहास है

उनके भीतर शब्द-रहित भय
और सिर्फ जख्मी आज है

पर वे शायद अभी जानते नहीं
वे पृथ्वी के बासिन्दे हैं करोड़ों

और उनके पास आवाजों का महासागर है
जो छोटे-से गुब्बारे की तरह
फोड़ सकता है किसी भी वक़्त
अँधेरे के सबसे बड़े बोगदे को

●

धूमनाथ सिंह

शेख मुजीबुर्रहमान

हमेशा वह एक ही अकेला व्यक्ति होता है
जिसके भीतर पहली बार
रोशनी की लौ फड़कती है।
हमेशा वह एक ही अकेला व्यक्ति
कभी तो लँगोटी लगाये :
अपनी लम्बी उँगलियों वाला हाथ
सारी मानवता के ऊपर उठाये हुए-शान्त।
कभी एक हरे झंडे के नीचे जलती आँखों से—चिंघाड़ता···
जिसकी उठी हुई बाँह पर कुर्त्ता
सफेद कबूतर की तरह फड़फड़ाता रहता है···

हमेशा वह एक ही अकेला व्यक्ति होता है, जो
काली बर्फ़ की तहें हटाता है।
हमेशा वह एक ही अकेला व्यक्ति होता है
जिसकी चमक से बर्बरों को चौंधा लग जाता है
और वे घबराकर हथियार बाँध लेते हैं
और एक सोयी हुई जाति अपने इर्द-गिद का अँधेरा
पहचानती हुई, सहमती हुई उठ खड़ी होती है—हमेशा

किसी को यकीन नहीं आता—किस तरह वह अकेला व्यक्ति
पूरा इतिहास बन जाता है—

एक पूरा हरा-भरा पहाड़ बन जाता है
जिसके सीने में संगीनें ठोंक जंगखोर भेड़िये भी
थोड़ी देर आराम करते हैं
जिसकी पथरीली पसलियों में सुरक्षित
वह जगी हुई जाति
इन संगीनों को उखाड़ फेंकती है।
और अपने लिए एक नया घर बनाती है।

फिर कुछ नहीं होता—जब वह अकेला व्यक्ति
वक्त की तहों से छनकर बाहर आता है
जब वह सभ्यता के जंगल को अपने भीतर के साइक्लोन
से झँझोड़ कर रख देता है
जब वह सफ़ेद सैलाब की तरह
फैलता-फैलता-फैलता चला जाता है
फिर कुछ नहीं होता।

चाहे उसे सूली पर लटका दो, चाहे उसे
गोलियों से भून डालो, चाहे उसे चट्टानों से बाँधकर
गिद्धों से नुचवा डालो, आँखों में गर्म सलाखें घोंप दो
किसी भी यातना की छाया उसकी आत्मा पर ठहर
नहीं पाती।
सिर्फ उसकी चमक
सदियों पर ठहर जाती है।

कुमार विकल

यह सब कैसे होता है

मैंने चाहा था कि मेरी कविताएँ
नन्हें बच्चों की लोरियाँ बन जाएँ
जिन्हें युवा माँएँ
शैतान बच्चों को सुलाने के लिए गुनगुनाएँ
मैंने चाहा था कि मेरी कविताएँ
लोक-गीतों की पंक्तियों में खो जाएँ
जिन्हें नदियों में मछुआरे
खेतों में किसान
मिलों में मजदूर
झूमते गाएँ।
किन्तु मेरी कविताओं की अजीब ही धुन है
खुले विस्तार से बन्द कमरों की ओर जाती हैं
उजली धूप में रहकर
अँधेरे के बिम्ब बनाती है।
मैं हैरान हूँ कि मेरी कविताएँ
काली हवाओं के बिम्ब कहाँ से लाती हैं
अंधी गुहाओं की हिम-शिलाएँ
और वेगवती काली नदियाँ कहाँ से आती हैं।
किस प्रक्रिया से शहर
जंगल में बदल जाते हैं।

जिनमें हिंसक जानवर दहाड़ते हैं।
मैं समझना चाहता हूँ यह कैसे होता है
यह सब कैसे होता है····
और जब दुनिया आराम से सो रही होती है
तब नींद की दुनिया से दूर—
मेरा हमनाम एक आदमी
अन्तर्यात्राएँ कर रहा होता है।
हर यात्रा के बाद
वह आदमी मुझे बताता है
'कि इन यात्राओं में—
मैंने कोई काली हवा नहीं देखी
किसी काली नदी में नहीं तैरा
किसी जंगल या अंधी गुहा में नहीं भटका
मैं भटका हूँ इसी कुटिल नगरी के तहखानों में
जहाँ आदमी के खिलाफ साज़िशें होती हैं।
हर यात्रा में मुझे बड़ी-बड़ी इमारतें मिलती हैं
जहाँ कोई गोली नहीं चलती
कोई बम नहीं फूटता
किन्तु जहाँ मुर्दा-गाड़ियाँ हर रात आती हैं
ज़ाहिर है, कुछ रहस्यमयी हत्याएँ होती हैं।
इन इमारतों में मुझे
दनदनाता हुआ
एक हिंसक, जानवर-नुमा आदमी मिलता है
जिसके हाथों में खजानों की चाबियाँ
और कुटिल नगरी की काली योजनाएँ होती हैं।'
मेरा हमनाम मुझे बहुत-कुछ बताता है
कि जब वह इन यात्राओं से लौटता है—
तो एक जंगल-सी दहशत उसे महसूस होती है

और उसे—
मेरी कविताओं के बिम्ब याद आते हैं।
मैं उसकी अन्तर्कथाओं से डर गया हूँ
और एक ठंडे आतंक से भर गया हूँ।
नहीं, मुझे अपनी कविताओं की हिमशिलाओं,
अंधी गुहाओं,
और काली हवाओं के स्रोत नहीं ढूँढ़ने हैं
मैं सिर्फ इन चित्रों, बिम्बों से मुक्ति चाहता हूँ
मैं इनको अंधी दुनिया से निकलकर
लोकगीतों की खुली दुनिया में लौटना चाहता हूँ।
मेरी माँ इन्तज़ार में होगी
मैं माँ के चेहरे की झुर्रियों पर
एक महाकाव्य लिखना चाहता हूँ।
मेरी माँ का चेहरा
गोर्की की 'माँ' से मिलता है
और अब भी उसका खुरदुरा हाथ
कुछ इस तरह से हिलता है—
कि जैसे दिन भर की मशक्कत के बाद
वह त्रिजन में कोई लोकगीत गा रही हो।
मैं चाहता हूँ कि मेरी कविताएँ
माँ के गीतों की पंक्तियों में खो जाएँ
बन्द कमरों से खुले चौपालों में लौट आएँ।

[त्रिजन-पंजाब की ग्रामीण महिलाओं का गोष्ठी स्थल।]

एक सामरिक चुप्पी

जब मैं अपनी कविताओं के बारे में सोचता हूँ
तो मुझे कई हथियारों के नाम याद आते हैं
और जब मेरे सामने कोई ताजा संगतरे छीलता है
तो मैं अपने बचपन में लौट जाता हूँ
···बचपन में हमारे पड़ोस में
वीरां नाम की एक लड़की रहती थी
जो मुझसे अक्सर कहती थी
कि मैं दुनिया का सबसे शरारती बच्चा हूँ
और जरूर किसी दिन
चाँद पर रहने वाली बुढ़िया का
चरखा छीनकर ले आऊँगा
और उसके काते हुए सूत से
अपने धनुष की डोरी बनाऊँगा।

वीरां संगतरे नहीं खाती थी
लेकिन उसके शरीर से ताजे संगतरों की
खुशबू आती थी
और जेहलम नदी तैरकर पार कर जाती थी।

नदी के पार संगतरों के बहुत पेड़ थे
मैंने कहा न वीरां संगतरे नहीं खाती थीं
(या शायद खा नहीं पाती थी)
लेकिन वह उनकी मदद से मुझे गिनती सिखाती थी···
एक पेड़ पर दस संगतरे हों
दो पर बीस
तीन पर तीस

चार पर चालीस···
और चालीस की संख्या आते ही
वह खिलण्डरी लड़की—
मुझे अलीबाबा के नाम से चिढ़ाती
और चालीस चोरों की कहानी सुनाती
कहानियाँ माँ भी सुनाया करती थी
और जेहलम के बारे में एक गीत गुनगुनाया करती थी
जिसमें ताजे संगतरों की खुशबू
और चालीस चोरों का जिक्र एक साथ होता था।

माँ अब बूढ़ी हो चुकी है
और कहती है कि जेहलम नदी सूखती जा रही है।
माँ का विश्वास है
कि जेहलम को वीरां का शाप है—
जिसके शरीर से ताजे संगतरों की खुशबू आती थी—
और जो एक रात इस नदी में डूबकर मर गई थी।

कहते हैं कि नदी में डूबकर मरने वालों की—
आत्माएँ भटकती रहती हैं···
···नैनं छिन्दति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः
आत्मा कभी मरती नहीं।
आत्मा मरती नहीं, शायद इसीलिए भटकती है।
और जब भटकती आत्मा की बात चलती है
तो सहसा मुझे—
नागार्जुन की एक कविता की याद आती है।
नागार्जुन·····
जो आजकल कलकत्ता में रहते हैं
और लोगों से कहते हैं

कि कलकत्ता आओ—
मैं तुम्हें भटकती आत्माएँ दिखाऊँगा
—भय और आतंक की ऐसी कविता सुनाऊँगा
कि जिस्म के रोंगटे खड़े हो जाएँगे
आँखों में दहशत के जंगल उग आएँगे।
कलकत्ता अब सिर्फ़ एक शहर का नाम नहीं
एक व्यवस्था का प्रतीक है
जिसे वनतन्त्र कहते हैं
और जिसकी हिफ़ाजत के लिए
आदमीनुमा दरिन्दे दनदनाते हैं!

नहीं, मैं कलकत्ता नहीं जाऊँगा
नहीं देखूंगा किस तरह आदमी—
एक आतंक से दूसरे आतंक तक जीता है
पीठ पर लाठियाँ खाता है
आँखों से अश्रुगैस पीता है।
नहीं देखूंगा किस तरह—
झूठी मुठभेड़ों के नाम पर
नौजवानों की हत्याएँ होती हैं
और घरों में इन्तजार कर रही माँएँ
आँसू सूख जाने के बावजूद रोती हैं···

···मुझे फिर अपनी माँ की याद आती है
जो अक्सर मुझे—
नागार्जुन की कविता से मिलती-जुलती
एक सच्ची कहानी सुनाती है
जिसमें दो नौजवान बहनों को
एक कारखाने की भट्ठी में
जिंदा जला दिया जाता है।

माँ का कहना है—
कि दोनों बहनों के जिस्मों से
ताजे संगतरों की खुशबू आती थी।

मैं जब भी माँ से
उस कारखाने का नाम पूछता हूँ
तो हर बार वह यह कहकर टाल जाती है
कि इस तरह के कारखाने हर शहर में होते हैं।
मैं गिनती करने लगता हूँ—
···एक शहर में दो कारखाने हों
तो दो में चार
पाँच में दस
दस में बीस
बीस में चालीस, और
····और स्मृतियों के दालानों से
भटकती हुई एक आवाज आती है
अलीबाबा···अलीबाबा।
चोर मटकों में बंद हैं
इन्हें गर्म तेल से जिन्दा जला डालो।

न···हीं···
मैं चीखना चाहता हूँ
चोर मटकों में बंद नहीं
तैयार दुश्मन की तरह सामने खड़े हैं
मैं और मेरे साथी इनसे कई बार लड़े हैं
लेकिन इनके हथियार
हमारे हथियारों से बहुत बड़े हैं।
मैं चीखता नहीं, चुप्प रहता हूँ

वीरां, तुम भी चुप्प रहो
और स्मृतियों के दालानों में लौट जाओ ।

लेकिन, नागार्जुन तुम—
मेरी इस चुप्पी को गलत मत समझना
मैं तो अपने आपको
एक और लड़ाई के लिए
तैयार कर रहा हूँ
और अपनी कविता से बाहर
एक सामरिक चुप्पी में
कविता से कोई बड़ा हथियार गढ़ रहा हूँ ।

●

वेणु गोपाल

जंगल-गाथा

हे पाठको !
बात तब की है । जब
मैं भी
आपकी ही तरह था । सम्मोहित । उस वक्त
सूर्योदय भी मुझे अच्छा लगता था और
चंद्रोदय भी । आदत थी
कि इधर देखता, उधर देखता और
बेसाख्ता 'वाह' या 'आह' कहकर एक कविता लिख
देता । आँखें
हमेशा ही
लबरेज़ रहा करती
अनुराग-जल से । और मैं
हमेशा ही
गोपियों के 'हे मोरे श्याम' के वजन पर
हर साँस में
'हे मेरे भारत' कहता हुआ
अपने आपको
परम पवित्र भारतीय संस्कृति के
नज़दीक पाता । फुटपाथों पर
पड़े भारतीय कंकाल भी
मुझमें

आत्मीयता जगाते और
सड़कों पर
शिकार की तलाश में
भटकते
मोटर-वाही भारतीय भेड़िये भी। और
यह जानते हुए भी
कि या तो मेरी
बारी आने वाली है—या उसकी—या फिर
उसकी। मैं
उनके भटकाव के प्रति
बुद्ध-मार्का करुणा से भींग जाता और
अगर देह-धर्म के नाते सहमता या डरता
तो भी
संविधान की चौहद्दी के भीतर ही रहकर। लेकिन—
यह सब तो शुरुआत से पहले की बात है। और
शुरुआत कब हुई ? मुझे नहीं पता। शायद तब—
जब कविताओं के चिकोटी काटने से
मैं पहली बार तिलमिलाया था। या शायद तब—
जब वे मेरी उँगली पकड़
मुझे
कुछ अजनबी बिम्बों और प्रतीकों के बीच
ले गयी थीं। और
मैंने पाया था
कि मेरे जिस्म पर का सारा गोश्त
भुरभुरा हो गया है। झर रहा है। और
उभर रहा है—
नीचे से एक नया जिस्म।
मेरा ही।

तपा हुआ। ताँबई। पत्थर-पिण्डलियाँ। हथौड़ा-हाथ।
अगिन-आँखें।

और
मेरी कविताओं ने कहा था—
'यही तुम हो।' और मैंने देखा था
कि यही मैं हूँ। देखा था
कि अपने ही स्वर
पहचाने नहीं जा रहे हैं। कुछ भी कहता तो पाता
कि धार्यं-धार्यं-सी आवाज़ हुई है। और सामने
किसी दीवार, किसी पेड़ या किसी चट्टान का हिस्सा
टूटकर गिर गया है। यहाँ तक
कि 'वाह' 'आह' या 'हे मेरे भारत'
कह पाना भी नामुमकिन हो गया था। और देखा था
कि मेरे हाथ की कविताएँ, मानों कुंजियाँ हैं।
जिनसे
खोल रहा हूँ
हवा को और आकाश को।
पा रहा हूँ—
कुछ खौफ़नाक लेकिन बेजान चेहरे। और
सुन रहा हूँ (कविताएँ कह रही हैं)
कि यह सब एक तिलिस्म है जो अब खत्म हो जायेगा।
शायद यह बात
तिलिस्म के मालिक ने भी सुन ली और—
और यही शुरुआत थी।

हे पाठको !
सबसे पहले

उस
तिलिस्म के मालिक ने यह किया
कि आया
और
आते ही एक झटके से
मेरे पैरों-नीचे की ज़मीन खींच ली। नीचे
सलाखें थीं। और
अब मैं उन नुकीलों सलाखों पर जा पड़ा था। बदन से
खून रिसने लगा था और दर्द से दाँत भींचता हुआ
मैं
अपने हाथों
याने कविताओं की ओर देखने लगा था कि वे अब
क्या करती हैं या क्या कहती हैं? वे
कह रही थीं—'इस
तरह यह सिद्ध हो गया कि तुम
अब तक क्या थे
कि सिर्फ़ नागरिक ही नहीं थे और
इसे भी देख लो
कि यह क्या था—और क्या है?' यहीं
और यह ग़लती
दरअसल
उस तिलिस्म के मालिक से
हो गयी। उसका
खयाल था शायद
कि तीखे दर्द का एक ही अहसास
ठीक कर देगा
मेरी और मेरी कविताओं की अक्ल। लेकिन
रिसते खून की गन्ध

ने जैसे
काया-कल्प की रही-सही कमी भी
पूरी कर दी थी। और
सबसे बड़ी बात तो यह हुई थी कि मैंने
उसे देख लिया था। असली
शक्ल में। उस वक्त कोई भी दर्शन, कोई भी नारा
गरज़ कि कोई भी नक़ाब
उसके चेहरे पर नहीं थी। वह
मेरे सामने था। मुस्कुराता
हुआ। डरावने दाँतों की पृष्ठभूमि में लाल-लाल लम्बी जीभ
लपलपा रही थी। नफ़रत से मुँह
फेर लेना चाहा
मैंने। लेकिन—

लेकिन हे पाठको!
नामुमकिन ही था यह
कि मैं उसकी ओर से मुँह फेर लेता। वह
चारों ओर था। और
फिर मैंने वह हैरत-अंगेज़ नज़ारा देखा
कि भेड़ों के झुण्ड के झुण्ड
रेंग रहे हैं। जुलूस की शक्ल में। और
जा रहे हैं
सीधे
उसके मुँह में। और
चबा रहा है वह। कचर-कचर।
कि उसकी एक दाढ़ में अटके हैं ज्योति बसु। और
दूसरी दाढ़ से लटके हैं अटल बिहारी वाजपेयी। वहीं
कहीं लोहिया, कामराज, निजलिंगप्पा भी थे। अब

कहाँ तक गिनाऊँ—पाठको, बस समझ लीजिए
कि 'नेति-नेति'। अर्जुन भी नहीं हुआ होगा
उतना ज्ञानवान, जितना कि उस
अपूर्व क्षण में मैं हुआ।

और
तब मैंने सुना—'वेणु गोपाल। देखा तुमने। कि तुम तो
कुछ भी नहीं हो।'
'मैं। मैं बहुत कुछ हूँ—कवि हूँ।' कविताओं का हाथ
मजबूती से थामते हुए मैंने कहा।
'कवि!—हो तो लिखो अच्छी-अच्छी मीठी-मीठी कविताएँ।
और लेते रहो समय-समय पर पुरस्कार, अनुदान वगैरह।
ताकि जीते रह सको!'
'लेकिन मैं अपनी ज़िन्दगी अपनी मर्जी से जीना चाहता हूँ।'
'ग़लत है' उसने कहा। मुस्कराते हुए।—'अपनी मर्जी से जीना स्वार्थ
है। और इस स्वर्गीय तंत्र में स्वार्थी बनने की इजाज़त
किसी को नहीं दी जा सकती।'
'तो फिर मैं दूसरों के लिए तो जी सकूँगा न!'
'दूसरों के लिए! हाँ—लेकिन यह याद रखकर कि मैं ही एकमात्र प्रतिनिधि
हूँ, उन तमाम दूसरों का। इसलिए तुम मेरे लिए जियोगे।
सिर्फ़ मेरे लिए।
और इस तरह तुम्हारी ज़िन्दगी अपने आप ही हो जायेगी—
दूसरों के लिए।'
'लेकिन मैं तो तुम्हारे लिए जीना हरगिज़-हरगिज़ नहीं चाहता।'
'क्यों?' उसकी मुस्कुराहट में कमी आयी। और जीभ की
लपलपाहट बढ़ गयी।
'क्योंकि तुम बेहद खतरनाक हो।'

खतरनाक होना तो खैर, मेरा स्वभाव है। जंगल जो हूँ।'
'वह तो देख ही रहा हूँ। अब तक मैं तुम्हें कुछ और
समझता था।'
'यों तो
अब भी तुम मुझे कुछ और ही समझोगे।'
'अब भी—
'हरगिज़ नहीं' मैंने और मेरी कविताओं ने साथ-साथ कहा।
'चुप रहो।' जबान की लपलपाहट चरम पर पहुँच गयी।
वह थोड़ी देर
घूरता रहा। फिर समझता हुआ-सा बोला—'देखो।
नक़ाबें ज़िन्दगी
की अमिट सच्चाइयाँ हैं। इनसे काफ़ी मुश्किलें—आसान
हो जाती हैं। और इनके पीछे देखने की कोशिश बेवकूफी है
और मौत की वजह बनती है और...।' हमें अब चुप पाकर
वह मुस्कुराया।
—'इन पर अच्छी-अच्छी और मीठी-मीठी कविताएँ भी
लिखी जा सकती हैं। दिल
बहला रहता है—वह अलग। नर्मदा-कावेरी का मसला ले
लो या तेलंगाना-विदर्भ
का झगड़ा। नहीं तो लोक-सभा, चुनाव, राष्ट्रभाषा, गोरक्षा वगैरह
—कई हैं।'
'या जैसे यह हवा, आकाश और समुद्र। ये भी तो नक़ाबें ही
हैं। और इन पर भी पुरस्कार वाली लिखी जा सकती हैं।'
मेरी आवाज़ में ज़हरीली ठण्डक थी।
'हाँ, ये भी हैं।' ज़हर को पहचान कर भी वह मुस्कुराता ही रहा।
—'और सबसे अहम् बात तो यह है कि तुम्हें चुनना है
ज़िन्दगी और मौत में से एक।'

हे पाठको !
इस संवाद के दौरान की मेरी हालत का अन्दाज
आप नहीं लगा सकते । यों
संवाद मैंने कई किये थे । लेकिन
वे सब के सब साहित्यिक थे । और
दूसरी बात
कि पिछले चौबीस बरसों में
पहली बार
एक चेहरा देखा था मैंने । वरना
हाथियों की चिंघाड़, शेरों की दहाड़,
कोयल की कूक, कांग्रेस ज़िन्दाबाद,
जनसंघ की जय, लॉंगलिव कम्यूनिज्म जैसी
तरह-तरह की चेहरा-हीन आवाज़ों से
रात-दिन घिरा रहता था ।
यह तो आप जानते ही होंगे

हे पाठको !
कि हर आवाज़ का
एक चेहरा होता है ।—अपना ।
लेकिन
मैंने नहीं देखा कभी भी
किसी भी
आवाज़ का चेहरा । यहाँ तक कि 'होता है'
यह भी कभी
किसी को कहते नहीं सुना । 'श्रीमान
अ, ब, स को वोट दो' से लेकर
'गरीबी हटाओ' तक की आवाज़ों की चेहरा-हीनता से ही
मेरी जान-पहचान थी । और

अब कहीं जाकर
दिखा था मुझे
एक चेहरा । जैसे आज तक की सुनी हुई
सभी आवाज़ों का ।
एक मुग्त ।
'तुम भी तो मौत ही हो । जंगल जो हो ।' मैंने कहा ।
'और इसीलिए आकर्षक भी तो हूँ ।—प्राकृतिक आकर्षण । देखो,
'कितने सुन्दर-सुन्दर दृश्य हैं मेरे पास ।'
और
मैंने देखा
चौराहों पर लाठियाँ खाती हुई भीड़ की भगदड़
('शान्ति-व्यवस्था' उसने कहा)
भूख बीमारियों से तिल-तिलकर मरते हुए लोगों का
वोट डालने के लिए मीलों लम्बी कतारें बाँधना
('जनतन्त्र की महिमा' उसने कहा)
हवाई-जहाजों और हेलीकाप्टरों से
अकाल और बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों का निरीक्षण
करते हुए सफ़ेदपोश तोंदियल शरीर
('दैवी-कोप और दयावान सत्ता' उसने कहा)
मोटरें और मिलें और मशीनें
('औद्योगिक उन्नति' उसने कहा)
और आखिर में
एक पंजर—हवाई-जहाजों और
हेलीकॉप्टरों से टकराकर नीचे गिरता, मशीनों
में पिसता, मोटरों से कुचला जाता—लहूलुहान—कटा-फटा । मैंने
उसे पहचाना
(नहीं सुना कि उसने क्या कहा ?)

—वह गाँधी का था। नहीं—शायद वह मेरे किसी
नज़दीकी दोस्त या रिश्तेदार का था अरे नहीं—
मैंने ग़लती सुधारी
—वह तो मेरा था।

और मैं चीख उठा। और मेरी कविताएँ भी
मेरे साथ चीख उठीं। 'नहीं—तुम्हारे
जंगल-तंत्र की ऐसी-तैसी। हम नहीं फँसेंगे इसमें।' और

हे पाठको !
हमने पाया
थोड़ी देर बाद ही
कि हमारी चीखें गुंजित-प्रतिगुंजित
हो रही हैं और
साथ में वैसी ही कई और भी चीखें
हैं ! शायद वे
आ जुड़ी थीं हमारी चीखों से या
हमारी चीखें ही जा मिली थीं
उनमें। कुछ भी हो
लेकिन
यह सच्चाई थी
कि अब हमारी चीखें
अकेली नहीं थीं।—अनगिनत थीं।
चुनौती लिये। और
मैंने देखा
कि उसकी मुस्कुराहट गायब हो चुकी है कि
जबान की लपलपाहट बढ़ गयी है कि वह
हड़बड़ा गया है कि वह

पागलों की तरह ज़मीन
खींचते हुए घूम रहा है।—आंध्र प्रदेश—बंगाल—
बिहार। नुकीली सलाखों पर
पड़े अनगिनत
खून-रिसते जिस्म। और एक सामूहिक
सघन इनकार और
यह ठोस अहसास
कि स्साला, जंगल बौखला रहा है।
नक़ाबों के खिलाफ़
खड़ा हुआ हमारा इनकार
हमारे जिस्म से रिसते
खून की
आखिर बूंद में भी रहेगा—यह हम
जान गये थे। और
इस तरह पहली
और आखिरी बार
साहसी हो गये थे।—
और
फिर हुआ यह
कि उसकी दुर्गति पर
सहसा
हममें से कोई हँस पड़ा। और
फिर
हम सब भी अपनी हँसी नहीं रोक सके और
बेइंतहा ठहाके लगाने लगे।
सो अब तक लगा रहे हैं।—लगाते ही जा रहे हैं।
और
अपनी विराटता के आडम्बर का गट्ठर उठाये

इधर-उधर दौड़ते हुए
जब उसने
हमारी हंसी सुनी तो
और बौखला गया।
सो अब तक बौखला रहा है।—बौखलाता ही जा रहा है।

तो हे पाठको !
हमारी इन इनकारी चीखों, ठहाकों और जंगल
की इस दुर्गति की
खबर
किसी भी अखबार में
कभी भी
नहीं आयी और
न आयेगी। इसलिए
मैंने और मेरी कविताओं ने जरूरी समझा
कि हम ही
आपको
सब कुछ
सुना दें
ताकि

हे पाठको !
सुनकर आप भी हंसें और
जंगल की
और ऐसी-तैसी हो जाय।
धन्यवाद।

१०-८-७१

●

हमारी ही बात

वह क्या कह रहा है ? वह
जो हर लड़ाई के बीच एक चलता-फिरता शिलालेख है—वह
जो एकदम अलग-अलग नजर आ रहा है, पसीना
बहाते-चेहरों में—वह
जो खुद 'रेखा' में तब्दील हो जाता है
हमारे होने को रेखांकित करने—वह क्या कह रहा है ?

हम नहीं सुन रहे हैं। वह हमीं से कह रहा है। हमारी ही बात।
उन बोजुका और कट्टा बन्दूकों की
धाँय-धाँय सी रपटों के जरिये

जो कीचड़ और धूल और मैल में
सनकर खूबसूरत हो गये
मेहनती हाथों में
जीन के झण्डों की तरह
इठलायी थीं।

हमें सुननी चाहिए वह रपट
कि हम खुद को संवाददाता जो कहते हैं। और
वह भी हमें संवाददाता
ही समझता है और
यह सम्मानित उपाधि
कोई हराम का माल नहीं है जो
मुफ़्त में
गड़प्प कर जायें। सुने तो सही आखिर

कि वह कह क्या रहा है !

सुनो हिटलर

हम गायेंगे / अंधेरों में भी /
जंगलों में भी / बस्तियों में भी /
पहाड़ों पे भी / मैदानों में भी /

आँखों से / होठों से /
हाथों से / पाँवों से /
समूचे जिस्म से /

ओ हिटलर !
हमारे घाव / हमारी झुर्रियाँ /
हमारी बिवाइयाँ / हमारे बेवक्त पके बाल /
हमारी मारखायी पीठ / घुटता गला /

सभी तो
आकाश गुनगुना रहे हैं ।
तुम कब तक दाँत पीसते रहोगे ?
सुनो हिटलर—!
हम गा रहे हैं ।

●

रमेश रंजक

नहिं चइये

दूर-देश का दाना-पानी नहिं चइये
नहिं चइये सरकार सयानी नहिं चइये ।

इतना सारा गल्ला आया कहाँ गया ?
हल्ले पर जो हल्ला आया कहाँ गया ?
खत्ती खाली गोदामों में ताले हैं
ताले पर चौकीदारों के भाले हैं

इधर भुखमरी, उधर जवानी नहिं चइये
नहिं चइये सरकार सयानी नहिं चइये ।

सारी चीजें पहुँचा दी गोदामों में
मंत्र फूंक डाला है नमक हरामों में
ढोंग रचाया फिर तुमने महँगाई का
और फासला बढ़ा दिया है खाई का

गंगा को यह बेईमानी नहिं चइये
नहिं चइये सरकार सयानी नहिं चइये ।

रोटी इतनी बिखरा दी है इधर-उधर
जिसे जुटाने में ही लग जाये दिन भर

रात थकन को देकर हम संतोष करें
सिर्फ पेट भरने की खातिर जियें-मरें

बैल नहीं हैं, हमको सानी नहिं चइये
नहिं चइये सरकार सयानी नहिं चइये ।

१५-१-७४

दमन की चक्की

दमन की चक्की पीस रही इन्सान
बापू के बन्दर की नांई, बैठे हैं बेईमान ।

जिसने तीखी भाषा बोली
उसको वहीं मार दी गोली
बेटा-बेटी गइया मइया
सब पर चला दमन का पइया
कहाँ बचायें कहाँ छुपायें, छोटा सा ईमान ।

होरी पड़ा अचेत खेत में
धनिया खाय पछाड़ रेत में
गोबर भूखा फिरे शहर में
ऐसी हालत है घर-घर में
प्रेमचंद के बाद दूसरा, कौन लिखे गोदान ।

रिश्वतखोरी, चोरबजारी
आदमखोर इजारेदारी
खड़िया मिला रही आटे में

खाते दिखा रही घाटे में
सबको को उल्लू बना रही है, पीछे की दूकान ।

हर पुल की दरार के भीतर
चहक रहा कोई आफ़ासर
सिसक रही कोई मजदूरी
जाँच कमेटी खाना पूरी
करके बना रही है अपनी कोठी आलीशान ।

इधर अफसरी, उधर तस्करी
आमदनी ये दुहरी तिहरी
नये जिस्म से करें ठिठोली
खींचे निर्धनता की चोली
ये कुर्सी के कुत्ते हमको समझ रहे नादान ।

इनके हाथ बड़े लम्बे हैं
पाँव नहीं इनके, खम्बे हैं
गांधी का चरखा चबा गये
भरे पेट पर देश खा गये
फिर भी ये भूखे के भूखे, माँग रहे अनुदान

कहीं नहीं होती सुनवाई
कितना ही चिल्लाओ भाई
फैली चारों ओर तबाही
लोकतंत्र में तानाशाही
बिना संगठन के न गिरेगी, ये काली चट्टान ।

१६-२-७४

•

सोमदत्त

राजनेता का अधसच सपना

घास का बघनखा पहने मैं हिरणों के झुंड में
हिरणों के झुंड में, घोड़े पर सवार शूर
घोड़े पर सवार, किए हिरण गिरफ्तार मैंने
हिरण गिरफ्तार नन्ही मतपेटी में बहार
गूंज रही जै-जैकार
जै-जैकार पर सवार मैं गया आमसभा में

कैसा अद्‌भुत गज ! विराट जनसागर में
विराट जनसागर में पनडुब्बी सा निर्भय पुरुष
निर्भय पुरुष के पाँवों तले लाखों चींटियां !
चींटियों की आँखों में शक्कर के पहाड़
मची हुई मारामार !
मारामार पे सवार मैं लौटा आमसभा से

हार थे, फूल थे, गुलाल चापलूसी के
गुलाल चापलूसी के खूनखोर जानवर
खूनखोर जानवर की नसों में चमत्कार
चमत्कार ! चींटियों की ढीठ बर्दाश्तियों में
ढीठ बर्दाश्तियों की कोमल गादी पर
सोया मैं खुरटि भर लौट आमसभा से

नींद थी कुर्सी थी घुमाघुम वादे थे
घुमाघुम वादों में मरते खपते लोग
मरते खपते लोगों में यकायक अजीब जोश
अजीब जोश ! जैसे हो जंगल में लगी आग
आग ! आग ! हाँ मशाल नत्थू खैरों के हाथों में
डरा तो टूटी नींद
टूटी नींद पर बगटुट मैं भागा आमसभा से

हमें ब्रह्माण्ड होना चाहिए

हमें तांबा होना चाहिए और जस्ता
लोहा और अल्मोनियम
पीतल और चाँदी
सोना और प्लेटीनम
हीरा और प्ल्यूटोनियम
हममें से किसी किसी को
मोती भी होना चाहिए या खनिज तेल
डीज़ल या पेट्रोल
मिट्टी का तेल तक बनने के लिए तैयार होना चाहिए
और कोयला भी
या शीतल जलधार धधकते भूखण्ड की
या पानी का सोता ऊँचे पर्वत पर
हमें तारागण होना चाहिए
अपने अक्षांशों देशांशों पर पृथ्वी की परिक्रमा करते ग्रह होना चाहिए
सूर्य होने की हद तक हममें से किसी को

धधकना चाहिए अपनी आत्मा में
हममें से किसी को चिड़िया होना चाहिए
क्योंकि उसमें उड़ान है
किसी को बैल
क्योंकि उसके पास सींग है चौड़ी पीठ मजबूत पुट्ठे
किसी को वनस्पति होना चाहिए
क्योंकि उसमें है अमृत की बूंदें परियों के घोंसले
दूसरों के लिए बनते दरवाज़े और खिड़कियाँ
पालना और आग
किसी को
हाँ हममें से किसी को सर्प भी होना चाहिए
क्योंकि उसमें विष है विष को काटने वाला
हममें से किसी को मछली होना चाहिए
फास्फोरस के लिए
किसी को मृग कस्तूरी के वास्ते
किसी को···
मनुष्य होने के बावजूद हम सबको
चौरासी लाख योनियों की ताकत जोड़कर
समरसता हासिल करनी चाहिए
पृथ्वी की वायु की आकाश पाताल की

हमें भूखण्ड नहीं
अनन्त सम्भावनाओं से भरा ब्रह्माण्ड बनना चाहिए
मिलजुल कर आपस में

कितना छोटा होता जा रहा हूँ मैं
कितना नगण्य
प्राणियों से स्पन्दित इस विराट में

लेकिन कितना खुला
कितना प्रवहमान !
खुद को उनके हर विस्मय, हर अधीरता से जोड़कर
घुलता हुआ उनके हर आत्मीय प्रवाह में ।

हरिजन हत्याकांड

तनकर
उस दिन जब
गर्दन उठा आँखें खोल
दृढ़ता से खड़ा हुआ
बाँहों का सोच का कायाकल्प करता हुआ वह
तब
किसी दैत्य, किसी देव, किसी भूत-प्रेत की
छाया नहीं थी उसके ऊपर
बादल ने गरज कर नहीं दी थी उसे कोई शक्ति
न काँप कर धरती ही उसे डिगा पाई इरादे से

वह निरा साधारण
झटके से आगे बढ़ा
अकेले
उन दुश्मनों की ओर
जो मशाल लिए नफरत की
बढ़ रहे थे उसी तरह
जैसे बढ़े थे कनाड़िया में, हाट-पीपल्या में, बेलछी में

या जैसे बढ़े थे सुना है
चिली में, दानांग में, ढाका, जकार्ता में
लेकिन
मल समेटने वाले फावड़े की धार पर
फिसलती किरणों की रक्तिम चकाचौंध
आँखों के तेज से
खौफ़ खा
ठिठक गये एक के खिलाफ़ सैकड़े में
एकत्र अपराधी ने
धक्क रह गये उनके जी

कीच-धँसा सदियों पुरानों से
कुचला हुआ चमरौधों से
गूंगा वह जन्म का
कैसा कसा खड़ा है
जाग्रत बजरंग-सा
उसमें···
उन्हें लाखों दिखे

और वह अकेला
सैकड़े के खिलाफ़ एक
जान की बाज़ी लगा
टूटा
टूट पड़ा वज्र सा

उदय प्रकाश

इनकलाब !

तुम जानते हो
वह आयेगा । कभी भी । शायद कुछ देर से ।
शायद बहुत जल्द । फिर भी तुम जानते हो ।
वह आयेगा । पक्का ।

अगर तुम्हारी आँख में
तर्क की दूरबीन है तो तुम उसे देख सकते हो ।
दूर । अँधेरे चिथड़े की तरह रोशनी का थक्का ।
आकाश के आईने में । शहर के तिरस्कृत मोहल्लों के
ऊपर । खदानों को तोड़कर उठता हुआ । चिमनी के
धुएँ की कलाकृति । खेत की धूल का शिल्प ।
वह एक धब्बा । जो हिलता है । डुलता है । बुझता है । उगता है ।
किरणों का घटाटोप जंगल ।
रोशनी की रंगीन मशालें हाथों में थामे हुए ।
तुम जिसे सुबह कहते हो !

वह आयेगा । तुम्हारी रग-रग की आत्मा में
तुम्हारे रोयें-रोयें के दिमाग में
यह सच्चाई पैठ चुकी है । तुम अकेले के
ईमानदार क्षणों में मान चुके हो
कि वह आयेगा ।

उसके आने का फैसला हो चुका है । उसका आना
समय की धड़कन में अंकित है । उसका आना
तुम्हारे होने से ज्यादा सच है । पेड़ से अधिक कद्दावर ।
चट्टान से ज्यादा ठोस ।
तुम्हारी तकलीफ और दर्द से ज्यादा सच !
तुम्हारी बीमार बेटी की एक दिन अचानक
मौत से अधिक सच ।
तुम्हारी जिन्दगी से ज्यादा सच !

तुम जानते हो कि आने पर वह देर से आने के लिए
माफी नहीं माँगेगा ।
झेंपी हुई हँसी नहीं हँसेगा । बीबी के सामने
तुम्हारी हँसी की तरह । वह तुम्हारा पढ़ा हुआ
नक्शा बदल डालेगा । तुम्हारी देखी हुई चीजें इधर-उधर
कर देगा । बच्चों का रंग बदल देगा ।

सिपाही के डण्डे में पीतल का गुट्टा नहीं
निब होगी । मजिस्ट्रेट की आँखों में मा'स्साब का
चश्मा । संभव है तुम्हें बाद में कई चीजें गायब मिलें ।
जैसे स्कूल के सरल अंक गणित से ब्याज के सवाल ।
जैसे आँसू-गैस । जैसे हत्या, लूट, बलात्कार संकटकाल ।
जैसे मैगजीन से रेहाना सुल्तान की नंगी टाँग । जैसे केटी मिर्जा
की उघड़ी छाती । जैसे इनकम टैक्स कर्मचारी ।

तुमने अपने बारे में सोचा है ? तुम उसे कहाँ मिलोगे ?
उसके आने के इन्तजार में तैयार या
डर में फरार । तुम किस सड़क की कौन सी खंदक में होंगे ।
खिड़कियों के परदे हटाते, दरवाजों को खोलते

या चाभी लेकर किसी कुएँ में
अपने जुर्म में डूबते ? तुम्हें उजाले में अपना
चेहरा कैसा लगेगा ? डरावना ?

अपनी गर्दन का तुम्हारे पास क्या मतलब होगा ?
शर्म ? जुलूस के आगे-आगे अपने उत्साह में
जिन्दा तुम्हारे कदमों की थरथराहट में कौन सा
संगीत होगा ?
तुम्हारे हाथों में स्वागत होगा
या क्षमा याचना ?

तुम चाहते हो कि उसके बाद
तुम सफाई के शिकार न हो । तुम्हें धँसके हुए मलबों
और कूड़ों के टीलों में न गिना जाये । तुम्हें
नगर के बन्द और विषाक्त नाबदानों से न
जोड़ा जाय । तुम न गीदड़ों की जमात में शामिल
होना चाहते हो न भेड़ियों को । तुम चाहते हो
कि तुम्हारी कविता बफादार दरबान का
कुत्ता चौकन्नापन न हो । तुम चाहते हो तुम्हारी भाषा के
गले में किसी की नमकदारी का पट्टा न हो ।

तो उठो । आने वाली सुबह को सलामी ठोंको ।

तैयार हो जाओ । अपनी ईमानदार छेनी और
हमलावर हथौड़े की चोटों का
संस्मरण सहेजो । उन्हें ठोस आकार की सार्थक
सच्चाई दो । रोशनी के खिलाफ दीवार का
एक-एक पत्थर दरकाओ ।

छेनी और पत्थर की मुठभेड़ को तरतीब दो। नोक से
शक्लें उभारो। कोई एक शक्ल।
जिससे लोग एकाएक चीख उठें—
"यही है—चंगेज खाँ !!"

अपनी सुविधा और संस्कार को छाती पर
बटन की जगह टाँक लो। और फेफड़ों में
आने वाले वक्त की साँस भर कर

सीना फुला दो। बदन को टूटने दो।
अपनी देह में भविष्य की ठण्डी फुरहरी
महसूस करो।

(जनयुग)

मालिक, आप नाहक नाराज़ हैं…

मालिक, आखिर हवा तो आपके कहने से नहीं चलती
धूप का क्या करेंगे आप जो गिरेगी ही
आपकी बरौनियों में
आपके ऊपर चढ़कर फुदकेंगी ही
रोशनी की नटखट, चौकन्नी गिलहरियाँ

रंगों पर तो बस नहीं है आपका
आप जब भी निहारेंगे
वे खिलखिलायेंगे आपके खून में
छुपी-छुपी खेलने लगेंगे घुसकर

इन सबको मना तो
नहीं कर सकते आप

मैं ठीक कह रहा हूँ मालिक
आप नाहक नाराज़ हैं
भूल जाइए बिल्कुल उन चीज़ों को
जिन पर हुक्म नहीं चलता आपका

आखिर हवा किसनिया कहारिन तो है नहीं मालिक
जो कराहती हुई चौका-बरतन करे आपका
बाल्टी भर-भर पानी छत तक चढ़ाये।
दो घण्टे छोटे बाबू को बहलाये
और फिर आपका
बिछौना बिछाये

आखिर धूप सुरजा तो है नहीं मालिक
जिसकी कमीज़ आप गुस्से में फाड़ दें और
जिसकी काली पीठ पर
अपनी चिलमची के गुल झाड़ दें

धूप सुरजा नहीं है मालिक
जिसे आप अपनी बैठकी में उकड़ूँ बैठाकर
गरियाते रहें
और पीटते रहें

और रंग
रंग आपके चाकर नहीं है सरकार
जो आपका लिहाज़ करें
हुक्का भर लायें, सलाम बजायें

आपकी ड्योढ़ीदार करें
आपके वनिहारों के बच्चे नहीं हैं ये रंग
कि आपको देखकर
अपने-अपने ओसारों में छुप जायें

इन सब पर नाहक ही बिगड़ कर
अपना खून जला रहे हैं आप
बेबात की बात बड़बड़ा रहे हैं आप
आखिर जेठ की धूप है तो
आँच तो रहेगी ही मालिक

आखिर हवा में धूल-धक्कड़
तिनका-पत्ता तो होगा ही
आपके सामने किसनिया की तरह
खड़ी तो नहीं रहेगी हवा
सिर झुकाये अदब से
चुपचाप

मालिक, यह धूप है
जेठ की असल
जैके-जैसे सूरज चढ़ेगा और धरती घूमेगी
यह और तपतपायेगी
लपलपायेगी गर्म लाल लोहे की तरह
और मोम की तरह चुयेंगे आप
कुलबुलायेंगे
बिलबिलायेंगे आप
कितना ही अँगोछा लगा लें सरकार,

कितनी ही खस की टट्टी, लस्सी, फुलेल
आफजा चढ़ा लें सरकार

और हवा···
इसके मन की बात तो आप मत पूछिये मालिक
जितना ही आप गुस्सायेंगे
उतना ही सिर पर दौड़ेगी
कंघी-पाटी मेटती हुई

आपकी कोई बात अगर इसके कलेजे लगी तो
मत पूछिए फिर सरकार
हवा बिगड़ उठती है तो कहर ढाती है
कंगूरे, गुम्बद, किले—सब बिखेर डालती है
जहाजों को गेंद की तरह उछालती है
नदियों को फुहार बना देती है
और तिनगी को बड़वागिन

आप तो फिर क्या हैं
मालिक,
फूस की तरह उड़ेंगे अन्धड़ में
पनकटी खायेंगे खपरैलों में
बेपर्द अलग हो जायेंगे
और नीचे
धरती पर इत्ते सारे रंग
सब के सब
आपका मज़ाक उड़ायेंगे

●

राजेश जोशी

पहाड़

पहाड़ अपनी ऊँचाई में डूबे हुए
डूबे हुए आसमान में
स्वप्न
देखते हैं।
बादल आते हैं
और उनकी पलकों पर
नए नए स्वप्न
चिपका जाते हैं।

किसी दिव्य पुरुष से नज़र आते हैं वे
सूरज के साथ-साथ
जागते हुए।

किसी जादूगर-से
अपनी जेबों में भरे
हजारों कहानियाँ और करिश्में
मुझे बुलाते थे पहाड़
जब मैं बहुत छोटा था।

कपड़े के जूते पहन
मैं दौड़ता हुआ चढ़ जाता था
उनके कंधों पर।

हाँफता और अपनी जीत के बाद
जैसे ही दो पल सुस्ताने को रुकता
वे किसी जादुई साड़ी की तरह
एक में से दूसरे
निकलते हुए,
खुलते हुए
फैल जाते थे
एक नई चुनौती की तरह
मुझे पुकारते हुए।
अद्भुत और आश्चर्यजनक
विराट फन्तासियों-से
पहाड़।

लकड़हारे अक्सर रास्तों में मिलते थे
जो लाते थे पहाड़ों से लकड़ियाँ
और गाँव में बेचते थे।
लकड़हारे अक्सर
मुझे फूल और पके जामुन
तोड़कर देते थे
और मुस्कुराते थे।

लकड़हारों के मेरे हम उम्र लड़के
जिनके साथ होता था कोई
मरियल-सा कुत्ता हर वक्त
अक्सर कुत्ते को छकाने का खेल खेलते
और मुझे कहानियाँ सुनाते।

बहुत-सी कहानियाँ थीं उनके पास
पहाड़ों की
जंगली जानवरों की
और अग्नि के देवता की कहानियाँ।

पहाड़ों पर घूमते
लकड़हारे अक्सर मिल जाते थे
सिर पर लकड़ियों का गट्ठर लादे।

पहाड़ सरल थे
लकड़हारों की तरह
मैंने गुस्से में नहीं देखा कभी उन्हें
लेकिन लोग कहते हैं
निर्णायक होता है पहाड़ों का गुस्सा

और स्वप्न और फूलों के लिए
वे हत्यारों पर
चट्टानों से वार करते हैं।

सलीम और मैं और उनसठ का साल

हम दोस्त थे पक्के
यार-दोस्तों में बैलों की जोड़ी कहा जाता था हमें।
साथ-साथ हम स्कूल जाते थे, साथ-साथ आते थे।
सलीम मेरे घर से एक सड़क पार
'शेखबत्ती की गली' में रहता था।

वह रात में अक्सर मेरे साथ पढ़ने के लिए आता था
उसकी गणित अच्छी थी और मैं
उसे हिन्दी के कठिन शब्दों का अर्थ
बतलाता था।
उमर में वह बड़ा था करीब तीन साल, पढ़ाई उसने देर से शुरू की थी
उसके लिए कलमा पढ़ना ज़रूरी था और वह काफ़ी दिनों तक
एक मौलवी से कुरान पढ़ने जाता था
मदरसे में उसने दाखिला लिया था
करीब सात-आठ साल की उम्र में।

तकरीबन नियमित था उसका आना-जाना हमारे घर में
हमारे घर की चाय में उसके तश्तरी-प्याले अलग थे
और पानी के लिए
एक काँच का गिलास भी।

•

यह उनसठ की धुलैड़ी के आस-पास की बात है
मैं भूला नहीं हूँ, वह मार्च के पहले सप्ताह का शुक्रवार था
एक अपरिचित लेकिन डरावनी दुर्गन्ध अचानक फैल गई थी
हवाओं में।
—यह कैसी बास आ रही है ?
मैंने पूछा था तुमसे।
—हवाओं में कबूतर मर रहे हैं।
यह तुमने कहा था सलीम।
अभी 'टोल वाली मस्जिद' के आस पहुँचे ही थे हम
कि शुरू हो गयी थी
पत्थरों की बरसात।
चारों ओर की गलियों से निकले थे चाकू और डण्डे
दौड़ते हुए चौराहे की ओर।

कितनी सारी भीड़
अचानक पैदा हो गई थी वहाँ
जैसे सड़कें फाड़कर निकल आये हैं लोग
एकाएक जैसे फिर से जीवित हो उठी हों दफ़न सदियाँ
हवा में रोपती हुई चीखें और विलाप

भागे थे हम बेतहाशा
लुटती दुकानों, फूटती बोतलों, बरसते पत्थरों
और तेजाब के छींटों से बचते हुए,
लाँघते हुए खून के रेलों और चीखों को चीरते हुए
घास की गांजियों से उठती लपटों के बाजू वाली
संकरी सी गली से निकलते हुए
बेसुध भागे थे अपन।
अपन आठवीं जमात में पढ़ते थे
उनसठ के साल में।

भागते हुए उस डर में कितने साथ-साथ थे अपन
अपने-अपने घरों की ओर मुड़ने तक।

•

शहर ने पहन लिया था रबर का चेहरा
और सड़कों को साँप सूँघ गया था
सारी दूर मँडराती रहती थी
पुलिस की गाड़ियों की आवाज
और अपने आप में सिमट कर बैठ गये थे सारे मकान
मानो वे मक़बरे हों।

घड़ियों की दुकान लुट गई
खिलौनों की दुकान लुट गई

कि सब्जीमण्डी
कि फूल बाजार लुट गया।

कि लुटते-लुटते बचा लिया गया सर्राफ़ा

वहाँ 'इतने' कत्ल हुए
वहाँ 'इतनी' अस्मतें लुटीं
कि उस मोहल्ले के सारे मकान जला दिये
कि राख हो गया 'अलवी प्रेस'

बच्चे मार डाले गए
फूल मार डाले गए
शब्द मार डाले गए

कि सर्राफ़ा बच गया।

'छगनलाल सेठ' के मकान पर खरोंच भी नहीं आयी
'फखरू भाई' का पेट्रोल पम्प नहीं जला
कि 'मोचीपुरे' की पूरी पट्टी साफ़ हो गई।

हम एक दिन भी नहीं निकले घरों से
आँसुओं और आँसू-गैस से भरी हवा में
उस डरी-डरी हवा में
क्या हमने एक-दूसरे के बारे में सोचा था ?

•

तीन लम्बे और क्रूर सप्ताह गुजर गए हमारे दिलों में
अधेरें के पेड़ और मरी हुई चिड़ियाँ छोड़कर
हमारी आत्मा में अपने गन्दे नाखून और टूटे हुए दाँत छोड़कर,

अपने दुर्गन्ध मारते जूते और कपड़े उतार कर,
तीन क्रूर सप्ताह गुजर गए ।

तीन सप्ताह बाद अक्षरों ने फिर से खोलीं अपनी आँखें भयभीत
मदरसे के दरवाजे खुले, किताबें खुलीं
'हवामहल' की पुरानी इमारत में लगने वाला
'बिरजीसिया मिडिल स्कूल' खुला
जिसकी एक लम्बी दालान में थी आठवीं क्लास
हमारी कक्षा ।

लकड़ी की वह लम्बी बेंच
जैसे हमारी प्रतीक्षा में खड़ी थी चुपचाप ।
बचपन से ही टाट-पट्टी पर साथ-साथ बैठते आये हम
वहाँ भी साथ-साथ बैठते थे ।
कोई खरोंच नहीं थी ज्यों-की-त्यों थी वह बेंच
जिससे तुम्हें चीड़ के पेड़ों की गंध आती थी और
जिसके बारे में बतियाते हुए हम
एक बूढ़े बढ़ई के किस्सों में खो जाते थे ।

हम एक ही दरवाजे से आये थे अन्दर तकरीबन साथ-साथ
उसी बेंच पर बैठे थे लेकिन साथ-साथ नहीं
तुम एक छोर पर थे रशीद और इदरीस के साथ, और मैं था
दूसरे छोर पर फुलवानी के साथ ।
इस तरह शुरू हुआ था एक नया दिन
इस तरह शुरू हुए थे नये दिन ।

कहाँ थी वह चीड़ के पेड़ों की गंध
कहाँ था वह बूढ़े बढ़ई का किस्सा

हमारी आँखों में वह क्या था—सलीम
हमारे चेहरों पर वह क्या था—सलीम
वह सन की सुतलियों-सा बटा हुआ
वह डर जैसा
घृणा जैसा
वह क्या था ?

क्या वह एक मरा हुआ कबूतर था
या अँधेरा चेहरा था हमारे घरों का
या सर्राफा बाज़ार था
जो चारों ओर लगी आग में भी बचा लिया गया
वह क्या था
दरवाज़े जहाँ बन्द हो गये थे

क्या केवल तीन सप्ताह में बदल गये थे हमारे चेहरे
आईना तो कुछ भी नहीं बताता
उस लाल पीठ वाले जानवर की पारे-सी आँखों में
नजर नहीं आता कुछ भी
वह हमारे चेहरों के सामने आते ही
मर जाता है ।

●

ज्ञानेन्द्र पति

मित्र के कमरे में

जाने कितने स्वप्न देखे होंगे
तुमने इस कुठरिया में

तुम्हारी नींद से उफन कर
कोई नीला सागर जाने कितनी बार
इसकी रंहीन दीवारों पर लिप गया होगा
जाने कितनी बार यह कोठरी
तुम्हारी नींद के अतल अँधेरे में
जगमगाते जहाज की तरह डगमगाई होगी

तुम्हारे धुँधले सपनों के भीतर से
चमकते फौव्वारों-सा उछलकर
जाने कितनी इच्छाओं ने
इस कुठरिया की ईंटों को बार-बार सींचा होगा
नींद में फड़कती तुम्हारी उँगलियों के पोरों से
भोर की तरह दमकते नन्हें शिशु उतर कर
जाने कितनी बार इसके झरते प्लास्टर की जगह
अपने गाते रुधिर का संगीत पोत गये होंगे

तुम्हारे जाने कितने कैसे सपनों की परछाइयाँ
इसकी छत की छाँह में मिली हुई हैं

मसालों और दवाओं की ही गन्ध नहीं है
इस कुठरिया की हवा में
विस्मृत जंगलों की दूरागत गन्ध है
अलग अलग ऋतुओं की तरह महकती हुई

तुम्हारे इस अकेले कमरे के घर में बैठा हुआ
बहसों के बाद अभी जबकि तुम उठकर बाहर गये हो
मैं तुम्हारी जिंदगी के ज्वार से घिर गया हूँ
इस कोठरी की धुँईली दीवारों पर
तुम्हारे भीतर के अतल जल की भी छाप है
अभी जब तुम बाहर से लौटोगे
वहीं बैठोगे
बायीं दीवार की झाँकती ईंटों के नीचे
जो तुम्हें,—अधरात के सपनों में जब तुम
जूझ रहे होते होंगे निहत्थे हिंस्र पशुओं आततायियों निरंकुश सरकारों से—
ताकती होंगी ममता और आशीष में भरी
आँखों की तरह एकटक

रामखेलवान
यह जो कल्ले फोड़े मसूढ़े खोले
गाछ खड़ा है
रामखेलावन एक नजर में इसकी पसलियाँ गिन लेता है
यानी दातुनों की संख्या

गाछों की संगत में रहते-रहते
आदमी बदल जाता है
घमासान शहर में भी उसकी मुलाकात
गाछों से होने लगती है

वह भी इक्का दुक्का उदास गाछों से नहीं
ऐसे गाछों से शहर की उपेक्षा के बावजूद
जिनकी बाँछें खिली होती हैं

पैंतीस वर्षों तक इन्हीं गाछों ने पोसा है रामखेलावन को
इनकी लकड़ी पर अपनी जाँघें और पेट रगड़ता
वह ऊपर तक गया है
और गाने की आँखों से उसने शहर को देखा है
तभी रामखेलावन जानता है गाछ किस तरह अपनी छाया देना
चाहते हैं
अपने चाहे-अनचाहे फल, अपनी अस्थियाँ
बहुत मुश्किल है इसे समझा सकना लेकिन पैंतीस वर्षों तक
रामखेलावन गाछों का प्रतिनिधि रहा है इस शहर में
दातुनों का बोझा सिरहाने लेकर फुटपाथ पर सोने वाला एक
काला आदमी भर नहीं जिसकी देह से
नीम की गंध आती है

चमगादड़

रात का उड़ता हुआ टुकड़ा
मेरे कमरे में घुस आता है
एक मँडराता हुआ चमगादड़
कि बाहर बहती अगाध रात की भँवर

श्रवणातीत ध्वनियों का एक तन्तुजाल !
टेढ़ी-मेढ़ी उड़ानों का एक अबूझ पैटर्न !

अकारण ही मेरे शरीर में रोमांच
तारों को छूती हैं जिसकी फुनगियाँ
रात के उसी वृक्ष से लटके हैं चमगादड़
रात के रेशम से बने हैं उनके पंख
रात के रसातल में डूबी है उनकी पहचान
दिन की दुनिया उनके लिए एक दुःस्वप्न
उनकी काया में रात का रक्त
उनकी साँस में रात की साँस
रात की रहस्य-कथा के वे भटकते हुए अक्षर

रात का उड़ता हुआ टुकड़ा
कमरे के बीचोंबीच
अपनी बेचैन परिक्रमाओं के केन्द्र में
गिर पड़ता है
जैसे कि वही हो पृथ्वी के चुंबक का ध्रुवान्त से सम्मोहित
निस्पन्द
जैसे कि वही हो अमावस्या का अन्तस्तल

आह !
क्या करना है असूर्य लोक से चू पड़े
इस चमगादड़ का ?
किस अतीत में बुहार कर फेंक देना है इसे
क्या करना है ?
कुछ न कुछ तो करना ही है
जो भी करना है जल्द
पता नहीं कहाँ चोट पड़ रही है इस निस्पन्द पड़े चमगादड़ को

('शब्द लिखने के लिए ही यह कागज बना है')
से ।

●